॥ श्रीः ॥

भूमिका

क्या मनुष्यके जन्मका कोई उद्देश्य ही नहीं है? क्या कुछ वर्षोंतक खाना पीना सोना आदि आपशुसाधारण कामोंके लिये ही है? मनुष्य किस लिये जन्म लेता है? किस अज्ञानान्धकार में के परदेके भीतरसे, किस अज्ञात मार्गसे, बिना निमन्त्रणके-बिना ही बुलाये आकर कुछ वर्षोंको बितादेता है, इसके बाद फिर किस मार्गसे किसप्रकार कहाँ चलाजाता है। उस समय कितना ही घबड़ाकर कितना ही पुकारो-कितने ही आदरके साथ निमन्त्रण दो-फिर लौटकर नहीं आता। यहाँ जिनको प्राणोंकी रस्सीसे बाँधकर रखता था, जिनके सुखके लिये अपना बलिदान करनेको तयार रहता था, उनको ही छोड़ कर चलाजाता है और फिर लौटकर आना नहीं चाहता। तो फिर किसलिये आया था? क्यों चला गया? इस आने जानेका-इस कुछ वर्षोंके नियमित मनुष्यजीवनका क्या कुछ उद्देश्य ही नहीं है?

यदि कुछ उद्देश्य नहीं है तो फिर यह आना जाना क्यों है? किसी उद्देश्यके बिना जीवनयज्ञकी इतनी तयारी क्यों है? बिना उद्देश्यके जीवनयज्ञकी सफलताके लिये ऋत्विक्, उद्गाता, सदस्य और आचार्यकी आवश्यकता क्यों है? क्या बिना उद्देश्यका वा बिना प्रयोजनका भी कोई काम होता है?

मनुष्यजीवनका कोई उद्देश्य अवश्य है और वह उद्देश्य मुक्ति है। किसकी मुक्ति? मेरी, मैं कौन हूँ? सोऽहम्। तो मुक्तिका क्या प्रयोजन है? सीपीमें स्वाति नक्षत्रका जल पड़ता है। सीपीमेंका कीड़ा अपने दोनों आवरणके मलिन बन्धनमें उस

स्वातीके जलको बाँधकर बैठजाता है और स्वातीके जलका मोती बन जाता है। वह कीड़ा सागरमें उत्पन्न हुआ है और सागरके भीतर ही डूबा पड़ा रहता है उसके पेटमें एक बिन्दु जल मोती बना हुआ है। वह जिससमय अपने बाहुबन्धनको छोड़देगा, उस समय जलका मोती जलमें गिरकर जल ही होजायगा उस समय जल होकर जलके साथ मिलकर मुक्त होजायगा। हम जीव हैं, हम भी किसी स्वाती नक्षत्रकी समान किसी एक क्षण (मुहूर्त) में महामायाके उदरमें घुसकर जीव बन बैठे हैं। महामायाके उस कराल कालकवलसे उद्धार पाकर अनन्तकी गोदीमें गिरते ही मुक्त होजायँगे। स्वाती नक्षत्रका वह जल ही मोती बनगया है, इसलिये इस समय उसको व्यक्त जल नहीं कहसकते। अनन्तका वह कण ही जीव बनजाता है, प्रकृतिके बाहुबन्धनमें पडगया है, इसलिये ही इस समय वह अव्यक्त है। आत्मामात्र अव्यक्त ब्रह्म है। बाहरी और भीतरी प्रकृतिको वशमें करके आत्माके इस ब्रह्मभावको व्यक्त करना ही जीवनका लक्ष्य व उद्देश्य है।

जिसको भूमि, जल, तेज, वायु वा आकाश नहीं कहसकते, इन्द्रिय वा इन्द्रियोंकी समष्टि नहीं कहसकते और जो सुषुप्तिकालमें एकमात्र शेष रहता है और जो महाप्रलयमें भी एकमात्र शेष रहता है वही आत्मा है। आत्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि किसी वर्णके भीतर नहीं है। वर्णाश्रमका आचार वा धर्म उसका नहीं है। ध्यान धारणा आदिमें भी उसका योग नहीं है। वह देहरूप नहीं है। अध्यासके बादल फटते ही वह केवल एकमात्र शेष रहजाता है उसके माता पिता नहीं हैं, स्वर्गादि लोक नहीं हैं, वेद नहीं हैं, यज्ञ नहीं हैं और तीर्थ भी नहीं हैं। सुषुप्तिके समय सबका विलय होजाने पर भी केवल वही शेष रहता है। वह सच्चिदानन्दमय है। जो स्वयं सब पदार्थोंका द्रष्टा है, जिसको कोई भी

देख नहीं सकता। जो बुद्धि आदि अन्तःकरणोंको प्रकाशित करता है, बुद्धि आदि अन्तःकरण जिसको प्रकाशित नहीं कर सकते, वही आत्मा पुरुष है। जिससे यह विश्व व्याप्त होरहा है, जिसको कोई भी व्याप्त नहीं करसकता। अभावरूप यह सब जगत् जिसकी आभासे भासरहा है वही आत्मा है। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि जिसकी समीपतासे प्रेरित होकर सेवककी समान अपने २ काममें लगे हुए हैं, वही आत्मा है। अहङ्कारसे लेकर देहपर्यन्त सब पदार्थ और सुख आदि सब विषय,घटपटकी समान जिसके द्वारा जानेजाते हैं वह नित्यबोधस्वरूप पुरुष ही आत्मा है आत्मा पुराण,निरन्तर,आनन्दस्वरूप है। सर्वदा एकरूप और ज्ञानमात्र है। आत्मा अपनी आभासे सब विश्वको प्रकाशित करके सत्त्वस्वभाव बुद्धिरूप गुहाके भीतरके अव्यक्ताकाशमें सूर्यकी समान प्रकाशित होरहा है। आत्मा मन, अहङ्कार, देह, इन्द्रिय और प्राण इन सबोंकी क्रियाको जानता है। आगमें तपायाहुआ लोहा और अग्नि जैसे एकाकार होजाते हैं अर्थात् अग्निकी दाहिका शक्ति लोहेमें और लोहेका भारापन आदि अग्निमें आरोपित होजाता है, ऐसे ही आत्मा वा पुरुष अन्तःकरण आदि प्रकृतिके साथ एकत्र होनेके कारण दोनों दोनोंके गुणोंको पाजाते हैं, तथापि आत्मा एकाकी है, नित्य है। घड़ा फूटजाने पर जैसे उसके भीतरका आकाश नष्ट नहीं होता है, ऐसे ही जड़ देहादिके नाशसे आत्माका नाश नहीं होता है।

हम मायाके परदेसे ढके जाकर अपने आपको भूलगये हैं। माया क्या है ? भ्रान्त इन्द्रियें मनुष्यको खेंचकर बाहर ले जाती हैं। जहाँ किसी प्रकार भी सुख नहीं मिलता,जहाँ मनुष्य सुख को खोजता फिरता है। अनन्त युगोंसे हम सब। यह उपदेश पाते चले आरहे हैं, कि—यह सब प्रपञ्च वृथा है, परन्तु हम सीखते

कुछ नहीं। अपने आप उद्योग किये बिना कोई नहीं सीख सकता मालूम होता है, कि हमें जबतक बड़ीभारी टक्कर नहीं लागेगी हम तबतक ईश्वरको प्रवृत्त नहीं होंगे। क्या हम चोट खाकर ही सीखेंगे? नहीं ऐसा भी नहीं होगा। जैसे पतङ्गा बार२ अग्निकी ओरको दौड़ता है तैसे ही हम भी बार२ विषयोंकी ओरको दौड कर जाते हैं कुछ भी सुख नहीं पाते तथापि बार २नयेर उत्साह से विषयोंकी ओरको दौडते हैं, अन्तमें धोखा पाकर हाथ पैर तोडकर मरजाते हैं, यही माया है।

पुराणमें मायाकी एक बड़ी सुन्दर कहानी है। एक दिन नारदजी ने श्रीकृष्णजीके पास जाकर कहा, कि–भगवन्! माया क्या पदार्थ है? इसको तो मैं समझकर भी नहीं समझ पाता। श्रीकृष्णने कोमल मुस्करानके साथ कहा, कि मायाके स्वरूपको समझते ही माया मरजाती है, जीव मुक्त होजाता है। अच्छा तो चलो मृत्युलोकमें घूम आवें हमारा एक काम है।

नारद और श्रीकृष्ण कितनी ही दूरतक चले गये बहुत दूरपहुँच कर श्रीकृष्णने कहा, कि, मुझे बडी प्यास लगी है–थोडासा जल लासकते हो नारदजी जल ढूँढनेको चलदिये। सामने ही ग्राम था, तहाँ एक गृहस्थके घर जाकर जल माँगा। एक सुन्दरी युवती जल लेकर आयी, नारद उसके रूपको देखकर मोहित होगये, जल और श्रीकृष्णकी प्यासकी बातको भूलकर उस सुन्दरीके पिताके पास पहुँच गये और उसके साथ अपना विवाह करनेकी प्रार्थना करनेलगे। नारदके साथ उस युवतीका विवाह होगया! कुछ दिनोंके बाद नारदजीके श्वसुर मरगये श्वसुरकी सब संपत्ति नारदजीको मिलगयी! नारदजीके तीन सन्तान होगयीं! पुत्र और धन सम्पदादि पाकर नारदजीने बारहवर्ष एकसे सुखमें बिता दिये अचानक एक दिन नारदजीका बडा लडका जलमें डूबकर

मरगया।जलके अहलेमें सब देश डूबा जारहा था। नारदजी बचे हुए दोनों पुत्र और स्त्रीको लेकर उस ग्रामको छोड़ेहुए जारहे थे। एक स्थान पर जलके भँवरमें पडकर नारदजी के ये दोनों पुत्र और स्त्री भी डूबगये।सैंकड़ों चेष्टा करने पर भी नारदजी उनको रोक नहीं सके और किनारे पर आकर उनके लिये हाहाकार करनेलगे। इसी समय न जाने किसने उनकी पीठपर कोमल हाथसे थपका और मानो यह कहा, कि—नारद! कई घड़ी होगई तुम तो जल लेनेगये थे? कहो नारद! जल कहाँ है? कई एक घड़ी, नारदजीकी समझमें तो बारह वर्ष बीत गए हैं! कई घडी में ही इतना बडा समय बीतगया।यही माया है! आत्माके निकट तो न काल है, न स्त्री है न पुरुष! मायाके भीतर वर्त्तमान हैं, इसलिये ही हम सर्पमें रज्जुके भ्रमकी समान उसको पकड़नेके लिये दौडते हैं!

परन्तु सर्वसंहारकर्त्ता काल तो सबका ही ग्रास करेगा और ग्रास कररहा है—कुछ भी बाकी नहीं छोडता। हम इस बातको देखते हुए भी नहीं देखते, समझते हुए भी नहीं समझते। वह पापीको खाता है, पापको खाता है,राजाको, प्रजाको,सुन्दरको, कुरूपको सबको ही खाजाता है,किसीको छोडता ही नहीं, सब ही उस एक अन्तिम गति विनाशकी ओरको दौड़े चलेजारहे हैं। हमारा ज्ञान, शिल्प, विज्ञान सब ही उस एक अनिवार्य गति मृत्युकी ओरको बढ़ा चला जारहा है। इस तरहकी गतिको कोई भी नहीं रोकसकता। इस विनाशाभिमुखी गतिको कोई एक मुहूर्तके लिये भी नहीं रोकसकता। हम उसको भूले रहनेकी चेष्टा करसकते हैं। पक्षाघातग्रस्थ (लकवेके) रोगीकी समान सब प्रकारसे इन्द्रियसुखके द्वारा उसके भूले रहनेकी चेष्टा करते हैं—परन्तु वह हमको नहीं भूलसकता। सडनेवाले मुर्देको सुगन्धित

फूलोंसे ढककर रखनेसे वह कै दिन रहसकता है ? एक दिन फूल कुमलाकर खिसक जायँगे और मुरदा पहलेसे भी अधिक भयानक दीखने लगेगा। हमारा सब जीवन भी ऐसा ही है। हम अपने पुराने सड़ेहुए घावको सोनेके कपड़ेमें लपेट कर रखनेकी चेष्टा करसकते हैं, परन्तु एक दिन आवेगा, कि-जब वह सोनेका कपडा खिसक जायगा और वह घाव बडा ही भयानक स्पष्ट दीखने लगेगा।

तो फिर उपाय क्या है ? जिस मायाके लिये हमारी सब दिशायें नष्ट होती चलीजाती हैं. उस मायाको त्यागनेकी क्या कोई आशा ही नहीं है ? है, अवश्य है। वह सुनो-यमुनाके तटपर से मोहनकी वंशीका मधुर शब्द सुनाई आरहा है। वह सुनो महामायाके महा-समरके मध्यसे मेघगम्भीर वाणीमें प्राणोंको मोहित करनेवाले स्वरमें सुनायी आरहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

मेरी इस दैवगुणमयी मायाके पार होना बडा ही कठिन काम है, जो मेरी शरण लेते हैं वे ही इस मेरी मायाके पार होसकते हैं।

हे थकेहुए और बोझेसे पिचेहुए पथिको ! आओ मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त करूँगा और आश्रय दूँगा।

इस अभय वाणीको-इस आनन्दकी बातको-इस रस भरे तत्त्व को सुननेके लिये हमें तयार होना होगा। मायाके मोहकोलाहल से चित्तको जरा स्थिर करना होगा। जिससे चित्त स्थिर हो, चित्तकी वृत्ति रुकजाय, उसका ही नाम योग है। इसलिये सब शास्त्रोंमें सब ग्रन्थोंमें सब साधुओंके मुखसे यही सुनते हैं, कि-योगकी साधना करो। शाक्त, शैव, सौर, गाणपत्य, और वैष्णव सब ही कहते हैं कि-योगके विना मुक्ति नहीं हो सकती। वेद,

पुराण उपनिषद्, स्मृति आदि सबकी ही व्यवस्था है, कि-माया के पार जानेके लिये योगसाधना करनी होगी।

एक श्रेणीके लोग कहते हैं, कि-यह तो हम जानते हैं। परन्तु एकसाथ संसारको छोड़कर स्त्री पुरुष बूढ़े माता पिता आदि परिवारको मार्गमें बैठाल वनमें जाकर योगी बन जाना अधर्म है। वनमें जाना अधर्म नहीं है, परन्तु हठसे योंही घर द्वारको छोड़ जाना अवश्य ही अधर्म है। तुम हम वनमें न जाकर स्त्री पुत्र माता पिता आदिको लिए ही बैठे रहें तो क्या कर सकते हैं? मृत्युके जरा जरा अंगुली हिलाते ही सदाके लिये चलेजाते हैं। स्त्री पुत्र आदि भी हमको छोड़कर चले जा सकते हैं। यहाँ कौन किसका है? हरएक श्वास पर, हृदयकी हरएक धड़कन पर, अपनी हरएक हालतमें हम विचारते हैं, कि हम स्वाधीन हैं, परन्तु उसी क्षणमें हम देखते हैं, कि-हम स्वाधीन नहीं हैं, किन्तु हम प्रकृतिके मोल लिये हुए दास हैं-हम शरीर, मन, सकल चिन्तायें और सकल भावोंमें प्रकृतिके क्रीतदास हैं, तो भी हम संसारके कर्त्ता धर्त्ता बनकर, सबको त्यागकर संसारको छोड़नेमें अधर्म समझते हैं. यही तो माया है! मायाकी फाँसीको काटना क्या सहज है।

तो फिर उपाय क्या है? संसारको छोड नहीं सकते तो फिर काम कैसे होगा? संसारको तो छोड ही नहीं सकते। स्त्री पुत्र आदिके बीचमें रहकर कर्त्तव्यका पालन करनेसे ही काम बनेगा। इस शुभ संयोगके लिये हमारे पुरातन ऋषि साधनतत्त्वके स्वर्गीय द्वारको खोलगये हैं। उनकी कृपासे अभी तक वह तत्त्व-वह सार-रत्न हिन्दुओंके घरोंमें-हिन्दुओंके हृदयोंमें-हिन्दुओंके साधनासाफल्यमें विद्यमान है। हम इस पुस्तकमें गृहस्थोंके लिये उन ही सब उपायोंको बतानेका यत्न करेंगे।

प्रिय गृहस्थों ! अनन्त मार्गके बटोहियों ! आओ हम कुछ यत्न, कुछ चेष्टा करके अपने पशुजीवनकी कुछ उन्नति करें। हम जो कुछ हैं, उसका अनुभव करें। बहुत्वपूर्ण जगत्में उस एक अखण्ड स्वरूपको देखनेकी चेष्टा करें। एकमात्र योगसाधनाके द्वारा ही यह होसकता है।

विनीत निवेदक—रचयिता।

॥ श्रीः ॥

भूमिका

क्या मनुष्यके जन्मका कोई उद्देश्य ही नहीं है ? क्या कुछ वर्षोंतक खाना पीना सोना आदि आपशुसाधारण कामोंके लिये ही है ? मनुष्य किस लिये जन्म लेता है ? किस अज्ञानान्धकारमें के परदेके भीतरसे, किस अज्ञात मार्गसे, बिना निमन्त्रणके-बिना ही बुलाये आकर कुछ वर्षोंको बितादेता है, इसके बाद फिर किस मार्गसे किसप्रकार कहाँ चलाजाता है। उस समय कितना ही घबड़ाकर कितना ही पुकारो-कितने ही आदरके साथ निमन्त्रण दो-फिर लौटकर नहीं आता। यहाँ जिनको प्राणोंकी रस्सीसे बाँधकर रखता था, जिनके सुखके लिये अपना बलिदान करनेको तयार रहता था, उनको ही छोड़कर चलाजाता है और फिर लौटकर आना नहीं चाहता। तो फिर किसलिये आया था ? क्यों चला गया ? इस आने जानेका-इस कुछ वर्षोंके नियमित मनुष्यजीवनका क्या कुछ उद्देश्य ही नहीं है ?

यदि कुछ उद्देश्य नहीं है तो फिर यह आना जाना क्यों है ? किसी उद्देश्यके बिना जीवनयज्ञकी इतनी तयारी क्यों है ? बिना उद्देश्यके जीवनयज्ञकी सफलताके लिये ऋत्विक्, उद्गाता, सदस्य और आचार्यकी आवश्यकता क्यों है ? क्या बिना उद्देश्यका या बिना प्रयोजनका भी कोई काम होता है ?

मनुष्यजीवनका कोई उद्देश्य अवश्य है और वह उद्देश्य मुक्ति है। किसकी मुक्ति ? मेरी, मैं कौन हूँ ? सोऽहम्। तो मुक्तिका क्या प्रयोजन है ? सीपीमें स्वाति नक्षत्रका जल पडता है। सीपीमेंका कीड़ा अपने दोनों आवरणके मलिन बन्धनमें उस

स्वातीके जलको बाँधकर बैठजाता है और स्वातीके जलका मोती बन जाता है। वह कीड़ा सागरमें उत्पन्न हुआ है और सागरके भीतर ही डूबा पड़ा रहता है उसके पेटमें एक बिन्दु जल मोती बना हुआ है। वह जिससमय अपने बाहुबन्धनको छोड़देगा, उस समय जलका मोती जलमें गिरकर जल ही होजायगा उस समय जल होकर जलके साथ मिलकर मुक्त होजायगा। हम जीव हैं, हम भी किसी स्वाती नक्षत्रकी समान किसी एक क्षण (मुहूर्त्त) में महामायाके उदरमें घुसकर जीव बन बैठे हैं। महामायाके उस कराल कालकवलसे उद्धार पाकर अनन्तकी गोदीमें गिरते ही मुक्त होजायँगे। स्वाती नक्षत्रका वह जल ही मोती बनगया है, इसलिये इस समय उसको व्यक्त जल नहीं कहसकते। अनन्तका वह कण ही जीव बनजाता है, प्रकृतिके बाहुबन्धनमें पड़गया है, इसलिये ही इस समय वह अव्यक्त है। आत्मामात्र अव्यक्त ब्रह्म है। बाहरी और भीतरी प्रकृतिको वशमें करके आत्माके इस ब्रह्मभावको व्यक्त करना ही जीवनका लक्ष्य व उद्देश्य है।

जिसको भूमि, जल, तेज, वायु वा आकाश नहीं कहसकते, इन्द्रिय वा इन्द्रियोंकी समष्टि नहीं कहसकते और जो सुषुप्तिकालमें एकमात्र शेष रहता है और जो महाप्रलयमें भी एकमात्र शेष रहता है वही आत्मा है। आत्मा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि किसी वर्णके भीतर नहीं है। वर्णाश्रमका आचार वा धर्म उसका नहीं है। ध्यान धारणा आदिमें भी उसका योग नहीं है। वह देहरूप नहीं है। अध्यासके बादल फटते ही वह केवल एकमात्र शेष रहजाता है उसके माता पिता नहीं हैं, स्वर्गादि लोक नहीं हैं, वेद नहीं हैं, यज्ञ नहीं हैं और तीर्थ भी नहीं हैं। सुषुप्तिके समय सबका विलय होजाने पर भी केवल वही शेष रहता है। वह सच्चिदानन्दमय है। जो स्वयं सब पदार्थोंका द्रष्टा है, जिसको कोई भी

देख नहीं सकता। जो बुद्धि आदि अन्तःकरणोंको प्रकाशित करता है, बुद्धि आदि अन्तःकरण जिसको प्रकाशित नहीं कर सकते, वही आत्मा पुरुष है। जिससे यह विश्व व्याप्त होरहा है, जिसको कोई भी व्याप्त नहीं करसकता। अमावरूप यह सब जगत् जिसकी आभासे भासरहा है वही आत्मा है। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि जिसकी समीपतासे प्रेरित होकर सेवककी समान अपने २ काममें लगे हुए हैं, वही आत्मा है। अहङ्कारसे लेकर देहपर्यन्त सब पदार्थ और सुख आदि सब विषय, घटपटकी समान जिसके द्वारा जानेजाते हैं वह नित्यबोधस्वरूप पुरुष ही आत्मा है आत्मा पुराण, निरन्तर, आनन्दस्वरूप है। सर्वदा एकरूप और ज्ञानमात्र है। आत्मा अपनी आभासे सब विश्वको प्रकाशित करके सत्त्वस्वभाव बुद्धिरूप गुहाके भीतरके अव्यक्ताकाशमें सूर्यकी समान प्रकाशित होरहा है। आत्मा मन, अहङ्कार, देह, इन्द्रिय और प्राण इन सबोंकी क्रियाको जानता है। आगमें तपायाहुआ लोहा और अग्नि जैसे एकाकार होजाते हैं अर्थात् अग्निकी दाहिका शक्ति लोहेमें और लोहेका भारापन आदि अग्निमें आरोपित होजाता है, ऐसे ही आत्मा वा पुरुष अन्तः-करण आदि प्रकृतिके साथ एकत्र होनेके कारण दोनों दोनोंके गुणोंको पाजाते हैं, तथापि आत्मा एकाकी है, नित्य है। घड़ा फूटजाने पर जैसे उसके भीतरका आकाश नष्ट नहीं होता है, ऐसे ही जड़ देहादिके नाशसे आत्माका नाश नहीं होता है।

हम मायाके परदेसे ढके जाकर अपने आपको भूलगये हैं। माया क्या है? भ्रान्त इन्द्रियें मनुष्यको खेंचकर बाहर ले जाती हैं। जहाँ किसी प्रकार भी सुख नहीं मिलता, जहाँ मनुष्य सुख को खोजता फिरता है। अनन्त युगोंसे हम सब। यह उपदेश पाते चले आरहे हैं, कि–यह सब प्रपञ्च वृथा है, परन्तु हम सीखते

कुछ नहीं। अपने आप उद्योग किये बिना कोई नहीं सीख सकता मालूम होता है, कि हमें जबतक बड़ीभारी टक्कर नहीं लगेगी हम तबतक इधरको प्रवृत्त नहीं होंगे। क्या हम चोट खाकर ही सीखेंगे? नहीं ऐसा भी नहीं होता। जैसे पतङ्गा बार२ अग्निकी ओरको दौड़ता है तैसे ही हम भी बार२ विषयोंकी ओरको दौड़ कर जाते हैं कुछ भी सुख नहीं पाते तथापि बार २नये२ उत्साह से विषयोंकी ओरको दौड़ते हैं. अन्तमें धोखा पाकर हाथ पैर तोड़कर मरजाते हैं, यही माया है।

पुराणमें मायाकी एक बड़ी सुन्दर कहानी है। एक दिन नारदजी ने श्रीकृष्णजीके पास जाकर कहा, कि-भगवन्! माया क्या पदार्थ है? इसको तो मैं समझकर भी नहीं समझ पाता। श्रीकृष्णने कोमल मुस्करानके साथ कहा, कि मायाके स्वरूपको समझने ही माया मरजाती है, जीव मुक्त होजाता है। अच्छा तो चलो मृत्यु-लोकमें घूम आवें हमारा एक काम है।

नारद और श्रीकृष्ण कितनी ही दूरतक चले गये बहुत दूरपहुँच कर श्रीकृष्णने कहा, कि, मुझे बड़ी प्यास लगी है-थोडासा जल लासकते हो नारदजी जल ढूँढनेको चलदिये। सामने ही ग्राम था, तहाँ एक गृहस्थके घर जाकर जल माँगा। एक सुन्दरी युवती जल लेकर आयी, नारद उसके रूपको देखकर मोहित होगये, जल और श्रीकृष्णकी प्यासकी बातको भूलकर उस सुन्दरीके पिताके पास पहुँच गये और उसके साथ अपना विवाह करनेकी प्रार्थना करनेलगे। नारदके साथ उस युवतीका विवाह होगया! कुछ दिनोंके बाद नारदजीके श्वसुर मरगये श्वसुरकी सब संपत्ति नारदजीको मिलगयी। नारदजीके तीन सन्तान होगयीं। पुत्र और धन सम्पदादि पाकर नारदजीने बारहवर्ष एकसे सुखमें बिता दिये अचानक एकदिन नारदजीका बडा लडका जलमें डूबकर

परगया। जलके प्रवाहमें सब देश डूबा जारहा था। नारदजी बचे हुए दोनों पुत्र और स्त्रीको लेकर उस ग्रामको छोड़ेहुए जारहे थे। एक स्थान पर जलके भँवरमें पड़कर नारदजी के ये दोनों पुत्र और स्त्री भी डूबगये। सैंकड़ों चेष्टा करने पर भी नारदजी उनको रोक नहीं सके और किनारे पर आकर उनके लिये हाहाकार करनेलगे। इसी समय न जाने किसने उनकी पीठपर कोमल हाथसे थपका और मानो यह कहा, कि—नारद! कई घड़ी होगई तुम तो जल लेनेगये थे? कहो नारद! जल कहाँ है? कई एक घड़ी, नारदजीकी समझमें तो बारह वर्ष बीत गए हैं। कई घड़ी में ही इतना बड़ा समय बीतगया। यही माया है! आत्माके निकट तो न काल है, न स्त्री है न पुरुष! मायाके भीतर वर्त्तमान हैं, इसलिये ही हम सर्पमें रज्जुके भ्रमकी समान उसको पकड़नेके लिये दौड़ते हैं!

परन्तु सर्वसंहारकर्त्ता काल तो सबका ही ग्रास करेगा और ग्रस कररहा है—कुछ भी बाकी नहीं छोड़ेगा। हम इस बातको देखते हुए भी नहीं देखते, समझते हुए भी नहीं समझते। वह पापीको खाता है, पापको खाता है, राजाको, प्रजाको, सुन्दरको, कुरूपको, सबको ही खाजाता है, किसीको छोड़ता ही नहीं, सब ही उस एक अन्तिम गति विनाशकी ओरको दौड़े चलेजारहे हैं। हमारा ज्ञान, शिल्प, विज्ञान सब ही उस एक अनिवार्य गति मृत्युकी ओरको बढ़ा चला जारहा है। इस तरङ्गकी गतिको कोई भी नहीं रोकसकता। इस विनाशाभिमुखी गतिको कोई एक मुहूर्तके लिये भी नहीं रोकसकता। हम उसको भूले रहनेकी चेष्टा करसकते हैं। पक्षाघातग्रस्त (लकवेके) रोगीकी समान सब प्रकारसे इन्द्रियसुखके द्वारा उसके भूले रहनेकी चेष्टा करते हैं—परन्तु वह हमको नहीं भूलसकता। सड़नेवाले मुर्देको सुगन्धित

फूलोंसे ढककर रखनेसे वह कै दिन रहसकता है? एक दिन फूल कुम्हलाकर खिसक जायँगे और मुरदा पहलेसे भी अधिक भयानक दीखने लगेगा। हमारा सब जीवन भी ऐसा ही है। हम अपने पुराने सड़ेहुए घावको सोनेके कपड़ेमें लपेट कर रखनेकी चेष्टा करसकते हैं, परन्तु एक दिन आवेगा, कि-जब वह सोनेका कपडा खिसक जायगा और वह घाव बड़ा ही भयानक स्पष्ट दीखने लगेगा।

तो फिर उपाय क्या है? जिस मायाके लिये हमारी सब दिशायें नष्ट होती चलीजाती हैं, उस मायाको त्यागनेकी क्या कोई आशा ही नहीं है? है, अवश्य है। वह सुनो-यमुनाके तटपर से मोहनकी वंशीका मधुर शब्द सुनाई आरहा है। वह सुनो महामायाके महा-समरके मध्यसे मेघगम्भीर वाणीमें प्राणोंको मोहित करनेवाले स्वरमें सुनायी आरहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

मेरी इस दैवगुणमयी मायाके पार होना बड़ा ही कठिन काम है, जो मेरी शरण लेते हैं वे ही इस मेरी मायाके पार होसकते हैं।

हे थकेहुए और बोझेसे पिचेहुए पथिको! आओ मैं तुम्हे सब पापोंसे मुक्त करूँगा और आश्रय दूँगा।

इस अभय वाणीको-इस आनन्दकी बातको इस रस भरे तत्त्व को सुननेके लिये हमें तयार होना होगा। मायाके मोहकोलाहल से चित्तको जरा स्थिर करना होगा। जिससे चित्त स्थिर हो, चित्तकी वृत्ति रुकजाय, उसका ही नाम योग है। इसलिये सब शास्त्रोंमें सब ग्रन्थोंमें सब साधुओंके मुखसे यही सुनते हैं, कि-योगकी साधना करो। शाक्त, शैव, सौर, गाणपत्य, और वैष्णव सब ही कहते हैं कि-योगके विना मुक्ति नहीं हो सकती। वेद,

पुराण उपनिषद्, स्मृति आदि सबकी ही व्यवस्था है, कि-माया के पार जानेके लिये योगसाधना करनी होगी।

एक श्रेणीके लोग कहते हैं, कि—यह तो हम जानते हैं। परन्तु एकसाथ संसारको छोड़कर स्त्री पुरुष बूढ़े माता पिता आदि परिवारको मार्गमें बैठाल वनमें जाकर योगी बन जाना अधर्म है। वनमें जाना अधर्म नहीं है, परन्तु इससे योंही घर द्वारको छोड़ जाना अवश्य ही अधर्म है। तुम हम वनमें न जाकर स्त्री पुत्र माता पिता आदिको लिए ही बैठे रहें तो क्या कर सकते हैं? मृत्युके जरा जरा अंगुली हिलाते ही सदाके लिये चलेजाते हैं। स्त्री पुत्र आदि भी हमको छोड़कर चले जा सकते हैं। यहाँ कौन किसका है? हरएक श्वास पर, हृदयकी हरएक धड़कन पर, अपनी हरएक हालतमें हम विचारते हैं, कि हम स्वाधीन हैं, परन्तु उसी क्षणमें हम देखते हैं, कि—हम स्वाधीन नहीं हैं, किन्तु हम प्रकृतिके मोल लिये हुए दास हैं—हम शरीर, मन, सकल चिन्तायें और सकल भावोंमें प्रकृतिके क्रीतदास हैं, तो भी हम संसारके कर्त्ता धर्त्ता बनकर, सबको त्यागकर संसारको छोड़नेमें अधर्म समझते हैं, यही तो माया है! मायाकी फाँसीको काटना क्या सहज है।

तो फिर उपाय क्या है? संसारको छोड नहीं सकते तो फिर काम कैसे होगा? संसारको तो छोड ही नहीं सकते। स्त्री पुत्र आदिके बीचमें रहकर कर्त्तव्यका पालन करनेसे ही काम बनेगा। इस शुभ संयोगके लिये हमारे पुरातन ऋषि साधनतत्वके स्वर्गीय द्वारको खोलगये हैं। उनकी कृपासे अभी तक वह तत्व—वह सार—रत्न हिन्दुओंके घरोंमें—हिन्दुओंके हृदयोंमें—हिन्दुओंके साधनासाफल्यमें विद्यमान है। हम इस पुस्तकमें गृहस्थोंके लिये उन ही सब उपायोंको बतानेका यत्न करेंगे।

प्रिय गृहस्थों ! अनन्त मार्गके बटोहियों ! आओ हम कुछ यत्न, कुछ चेष्टा करके अपने पशुजीवनकी कुछ उन्नति करें। हम जो कुछ हैं, उसका अनुभव करें। बहुत्वपूर्ण जगत्‌में उस एक अखण्ड स्वरूपको देखनेकी चेष्टा करें। एकमात्र योगसाधनाके द्वारा ही वह होसकता है।

विनीत निवेदक—रचयिता।

॥ ॐ तत्सद्-ब्रह्मणे नमः ॥

सहज-योगाभ्यास

अर्थात्

गृहस्थकी योगशिक्षा

योगपरिचय

योगकी शिक्षासे पहले, योग क्या वस्तु है ? पहले इस बात को अच्छे प्रकारसे समझलेना उचित है, क्योंकि-जिस बातको सीखना है, उसका परिचय, उसकी अवस्था और उसके स्वरूप को अच्छे प्रकारसे विना जाने उसको सीखा ही कैसे जायगा ? कोई २ कहते हैं, कि-योग बडा ही गहन और जटिल विषय है, उसको सीखना तो बडा कठिन है। कोई २ कहते हैं, कि—योगको सीखनेके लिये संसारको छोडकर अनन्त अन्धकारपूर्ण किसी पहाडकी गुफामें अथवा जनहीन निर्जन वनमें जाना पडता है। स्त्री पुत्र आदि कुटुम्ब परिवारकी माया ममता छोडनी पडती है। कोई २ कहते हैं, कि-योगको सीखनेका कोई उपायही नहीं है, कलियुगमें कोई योग सिखानेवाला मिलता ही नहीं। कोई कहते हैं, कि-योगशास्त्रके मुख्य ग्रन्थका तो अभी पता ही नहीं चलता, जबतक वे ग्रन्थ न मिलजायँ तबतक योगको सीखनेका कोई उपाय ही नहीं है। कोई २ तो ऐसा कहनेका भी साहस करते हैं, कि—पाँच रुपये दो और हम योग सिखा देंगे, साथ ही जीवात्मासे परमात्माको मिलादेंगे। ऐसी २ बातें देख सुनकर लोग योगको हौआ मानकर इससे कोसों दूर भागते हैं, परन्तु योगको सीखनेकी उनकी आकांक्षा दूर नहीं होती इसका कारण बताना भी कुछ कठिन नहीं है। योगमें दुःख-

विहीन निरवच्छिन्न सुख मिलता है, सुखका अनुभव सबको ही ही होता है। कोई कुछ भी कहे, परन्तु योग हौआ नहीं है और बालकके हाथमें धरा हुआ लड्डू भी नहीं है। सीखनेसे सीखा जा सकता है और न सीखने पर दूसरे कार्योंकी समान अपने आप ही उसका भी अभ्यास भी नहीं होसकता।

योग जटिल या गुप्त विषय नहीं है, जरा ध्यान देकर यत्न-पूर्वक अभ्यास करने पर योग अवश्य ही सीखा जासकता है। योग सीखनेके लिये संसार और स्त्री पुत्र आदिको त्यागकर निर्जन वनमें या पहाडकी गुफामें जाना ही आवश्यक होता तब तो कभी किसीने योगशिक्षा पायी ही नहीं होती और योगविद्या आजतक अन्धकारमें ही पडी होती क्योंकि- जिनको योगका कुछ परिचय ही नहीं है, जो कामना और वासनाओंमें जड़ेहुए हैं, जो मायाके मोहजालमें बँधेहुए हैं, वे स्त्री पुत्र आदि कुटुम्ब परिवारको छोडकर वनमें कैसे जासकते हैं? मायाकी फाँसीको-वासनाके बन्धनको कैसे काटसकते हैं इससे प्रतीत होता है, कि-पहले योगशिक्षा है और उसके बाद संसारका त्याग है। इसलिये संसारमें रहकर ही-स्त्री पुत्र आदिसे संबन्ध रखतेहुए ही योग सीखा जाता है और योगसाधना की जासकती है।

योगशास्त्र किसी अन्धेरी कोठरीमें बन्द नहीं पडा है। योगके मुख्य ग्रन्थ तो यह विशाल प्रकृति है। चन्द्र सूर्य और तारागणों से शोभायमान आकाशमण्डल और जीव-जन्तु-तृण आदिसे ढके तथा नद-नदियोंसे घिरेहुए भूमण्डलसे हम योगशिक्षाकी सामग्री इकट्ठी करसकते हैं।

दशपाँच रुपये तो क्या यदि इस सब पृथ्वीका राज्य भी बदलेमें देदिया जाय तब भी कोई जीवात्मा-परमात्माके मिलनका दर्शन नहीं करासकता, वह तो अपनी साधनासे अपनी अन्तर्दृष्टिके विकाशमें ही दीखता है। जबतक साधकमें अपनी साधनाके बलसे

यह शक्ति उत्पन्न नहीं होती तब तक कोई किसीको नहीं दिखा सकता। पूर्णतम ईश्वर महायोगीश्वर भगवान् श्रीकृष्णजीने एक दिन अर्जुनको उचित उपदेशके द्वारा कुछ तयार करके और बड़े ही अनुरोधसे दिव्य दृष्टि देकर परमात्मभाव दिखाते हुए कहा था, कि–

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

हे सखे! अपने इस स्थूल नेत्रसे ही तू मेरे परमात्मभावको नहीं देखसकता, मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूँ, उससे तू मेरी योग-विभूतिको देख!

परन्तु अर्जुन खरीखा शिष्य भी उस परमात्मविभूति देखनेमें स्थिर न रहसका, किन्तु व्याकुलचित्त होकर अनन्तसे सान्त होनेके लिये प्रार्थना करनेलगा, कि–

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

हे देवेश! पहले न देखेहुए इस विश्वरूपको देखकर मैं प्रसन्न तो हुआ, परन्तु मेरा मन भयके मारे व्याकुल होगया है, इसलिये मुझे अपना वह पहला ही रूप दिखाइये, हे जगदाधार! मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये।

हम तुम तो क्षुद्र मनुष्य हैं! रुपयेके बदलेमें उस रूपको कैसे दिखासकते हैं? उसको तो धारण करनेकी भी शक्ति हममें नहीं है! इसलिये जो परमात्मदर्शन करानेका दावा करते हैं वे पाखंडी हैं। हाँ योगशास्त्रके एक कौशलके द्वारा केवल एक प्रकाशकी रेखा दिखायी जासकती है। उस प्रकाशको देखना वा दिखाना, कोई भी पुरुष जरासा यत्न करनेसे सीख सकता है, वह साधना इस पुस्तकमें आगे लिखदी गई है।

योगशिक्षा कठिन नहीं है। योगका उपदेश करनेवालोंका भी सर्वथा अभाव नहीं होगया है। फिर लोग योग सीखते क्यों नहीं ? इसके लिये कुछ धर्मज्ञान, कुछ न्यायनिष्ठा, कुछ दृढ़ता और कुछ अभ्यासपटुता होनी चाहिये। अब योग क्या वस्तु है, पहले इसकी ही आलोचना करेंगे। योगका अठारह प्रकारका अर्थ है उतने अर्थका बोझा उठाकर हम कष्ट पाना नहीं चाहते। योगके ग्रन्थोंमें पातञ्जल दर्शन एक प्रामाणिक और दार्शनिक ग्रन्थ है, उसमें लिखा है—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"

मनकी वृत्तियोंके निरोधका नाम योग है। बात जितनी सहज मालूम होती है, वास्तवमें उतनी सहज नहीं है, इसलिये इसकी विस्तारसे आलोचना करनेकी आवश्यकता है।

यदि चित्तकी वृत्तिके निरोधका ही नाम योग है, तो चित्त क्या है ? चित्तकी वृत्ति किसको कहते हैं ? और उसका निरोध करना क्या पदार्थ है ? यह समझना होगा, तब ही समझमें आवेगा, कि योग क्या पदार्थ है और चित्तवृत्तिके निरोधकी शिक्षाके लिये ही योगशिक्षा वा योगसाधना करनी होगी।

❀ चित्त और चित्तकी वृत्ति ❀

चित्त और चित्तकी वृत्ति कहनेसे हम किस वस्तुको समझे ? चित्त मनस्तत्त्वरूप है—वृत्तियें उसकी तरङ्गरूप हैं। जब बाहरके कुछ कारण उसके ऊपर काम करने लगते हैं, उसी समय वे रूप धारण करते हैं, हम जिसको जगत् कहते हैं वह सब ये चित्तकी वृत्तियें हैं। इस बातको और भी स्पष्ट करके बताना होगा। पातञ्जल दर्शनके टीकाकार कहते हैं, कि—"विषयसम्बन्धा-च्चित्तस्य या परिणतिः सा वृत्तिः।" विषयोंके सम्बन्धसे चित्तका

जो परिणाम होता है उसका ही नाम वृत्ति है। यहाँ एक नदीकी बात याद करनी चाहिये हम नदीकी तलीको नहीं देखपाते, उसके न दीखनेका कारण यह है कि—उसके ऊपर छोटी २ तरङ्गें बनी रहती हैं। यदि जल स्थिर होता तो हम उस नदीकी तलीको देखसकते यह जल क्रमसे तरङ्गें उठनेके कारण चञ्चल होरहा है, इसलिये ही हम तलीको नहीं देखपाते अब समझो, कि—नदीकी तली ही हमारा वास्तविक स्वरूप है। नदी चित्त है और बुलबुले वा तरंगें उसकी वृत्तियें है। नदीमें जो तरङ्गें उठती है वह नदीकी तलीमेंसे ही उठती हैं, जब ऊपर आती हैं तब ही हम उनको देखपाते हैं। यह जो गाड़ी घर २ करती हुई चली गयी, जितने लोगोंके पासको होकर गई उन सबोंको ही उस गाड़ीके जानेकी खबर नहीं है, यदि सबको खबर होती तो बहुतसे उससे लगेहुएसे क्यों होजाते ? वे सब ही बचजाते। बहुतसे उधरको देखरहे थे तब भी उनको वह गाडी नहीं दीखी, इसका क्या कारण है ? कारण यही है, कि—मन दर्शनेन्द्रिय (चक्षु) से संयुक्त नहीं था, इसलिये पहले बाहरका यन्त्र, फिर इन्द्रिय, इन दोनोंसे मन युक्त होना चाहिये। मन जो अनुभव करता है उसका संस्कार लेकर निश्चयात्मिका बुद्धिके पास पहुँचा देता है, उसके पहुँचते ही बुद्धिमेंसे उसकी एक प्रतिक्रिया होती है, इस प्रतिक्रियाके साथ अहंभाव जाग उठता है। वह क्रिया और प्रतिक्रिया मिलकर जीवात्माके पास पहुँचते हैं। उस समय जीवात्मा इस समष्टिरूप क्रिया और प्रतिक्रियाको एक वस्तुरूपसे पाता है। इन्द्रियें, मन, निश्चयात्मिका बुद्धि और अहङ्कार मिलकर जो कुछ होता है उसको अन्तःकरण कहते हैं। चित्त नामक मनके भीतर वे सब भिन्न २ प्रतिक्रियारूप हैं। चित्तके भीतरके इस सब चिन्ताप्रवाहको वृत्ति कहते हैं।

अब यह जानना चाहिये, कि चिन्ता किसको कहते हैं। चिन्ता माध्याकर्षण वा विकर्षण शक्तिकी समान एक शक्ति है। प्राकृतिक शक्तिके अक्षय भण्डारमेंसे यह शक्ति लीगयी है। चित्त इस शक्तिको ग्रहण करता है और जब वह भौतिकशक्तिके दूसरे छोर पर पहुँचती है तब उसको चिन्ता कहते हैं। यह शक्ति जीवके खायेहुए पदार्थोंमेंसे संग्रह कीजाती है। खायेहुए पदार्थोंकी शक्तिसे ही शरीरकी गति इत्यादि शक्ति होती है और चिन्तारूप अतिसूक्ष्म शक्ति भी इससे ही उत्पन्न होती है। इसलिये मन चैतन्य नहीं है, परन्तु चैतन्यमयसा प्रतीत होता है। चैतन्यमय प्रतीत होनेका कारण यह है, कि—चैतन्यमय आत्मा उसके पीछे लगाहुआ है। तात्पर्य यह है, कि—जो 'मैं' है वह आत्मा है—मन केवल एक यंत्र है, उस यंत्रके द्वारा हम बाहरी जगत्का अनुभव-मात्र करते हैं

यह मन तीन प्रकारकी अवस्थाओंमें रहता है। शास्त्र कहता है, कि—सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंमें ये तीन प्रकारकी अवस्थायें होती हैं। मन जब शान्त होता है, निर्मल होता है, स्थिर होता है तब उसको सत्त्वगुणकी अवस्था कहते हैं यही मनकी स्वाभाविक अवस्था है। नदीका जल निर्मल और शान्त होने पर जैसे उसकी तली दीखती है ऐसे ही मनके निर्मल और शान्त होने पर उसकी तली अर्थात् चिद्घन, निरञ्जन आत्माका दर्शन होता है। दूसरी अवस्था रजोगुण है, इस अवस्थामें मन बाहरके कामकाजको लेकर बड़ा ही व्यस्त होता है। इस अवस्थामें केवल प्रभुता और भोगकी इच्छा होती है। इसमें चित्त बराबर चञ्चल रहता है, इसलिये ही अत्यन्त मलिन न होने पर भी चञ्चलताके कारण चित्तकी तली वा निरञ्जन आत्माका दर्शन नहीं होता। इसके बाद तमोगुणकी तीसरी अवस्था है। नदीके जलको मँघोल देनेके साथ इस अवस्थाकी तुलनाकी जासकती है,

पशुओंका मन ऐसा ही होता है, उसमें नित्य अन्धकार भरा रहता है। भोजन, निद्रा, स्त्री पुत्रोंका पालन और खाने पीनेके पदार्थों को इकट्ठा करनेके सिवाय जगत्में कोई और काम है, कोई और उच्च चिन्ता है, कोई ऊँचा उद्देश है, यह बात उनके मनमें आती ही नहीं। पशुओंके ऐसे मनकी समान ही तमोगुणी मनुष्योंका भी मन होता है।

नदीके जलकी स्वाभाविक अवस्था जैसी निर्मल होती है, चित्तकी स्वाभाविक अवस्था भी ऐसी ही निर्मल होती है। मट्टी आदिके मेलसे जैसे जल गदला हो जाता है, जैसे वायुके संयोगसे वह जल चंचल हो जाता है, ऐसे ही चित्त सदा सत्त्वगुणमय, निर्मल और शान्त होने पर भी तमोगुणके संयोगसे विशेष मलिन और रजोगुणके संयोगसे चंचल होजाता है। इसलिये ही हम स्वरूपावस्थाको नहीं समझ सकते। चित्त सदा ही अपनी स्वाभाविक पवित्र अवस्थाको फिर पानेके लिये चेष्टा करता है, परन्तु इन्द्रियें सदा बाहरको घसीटकर लेजानेके लिये खेंचती रहती हैं। इस बाहरको जानेकी प्रवृत्तिको रोकनेका ही नाम योग है। इस खिचावटका—इस सदा चंचल प्रवृत्तिका-दमन होने पर ही मनुष्य अपने स्वरूपको जान सकता है उस समय प्रकृति उसकी दृष्टिमें अतितुच्छ मालूम होती है। जैसे सोना और चाँदी पहले मट्टी आदिसे सने हुए होते हैं, अन्तमें उत्तम प्रकारसे धुलकर तेजोमय हो चमकने लगते हैं, ऐसे ही देही आत्मतत्त्वका दर्शन करके एक, स्वरूप, कृतार्थ और दुःखसे मुक्त होजाता है, उस समय वह कालको भी जीत लेता है, और सब ज्ञान एक मुहूर्तमें उसके सामने आकर खड़ा होजाता है, आत्मा अपनी खोई हुई महिमाको फिर पाजाता है।

चित्तकी वृत्तिको अवस्था भी कह सकते हैं। योगशास्त्रमें उस वृत्ति वा अवस्थाको पाँच भागोंमें बाँटा है यथा—क्षिप्त मूढ,

विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध,बाहरी वस्तुओंकी चाहनामें चित्त जिस समय चलायमान हो उठता है, जिस समय एक विषयका विचार करते ही और दूसरा विषय आकर उपस्थित हो जाते हैं उस समय चित्तकी क्षिप्त अवस्था होती है, कर्त्तव्य अकर्त्तव्यका ज्ञान न हो कर केवल शत्रुके वशमें होकर काम करते फिरनेका नाम मूढ़ अवस्था है, कभी शत्रुके वशमें कभी बड़ी भारी चिन्तामें, कभी वासनाकी आगमें और कभी धर्मामृतमें मग्न होजानेका नाम विक्षिप्त अवस्था है। इस अवस्थामें, मन अपने केन्द्रकी ओरको जानेकी चेष्टा करता है परन्तु इन्द्रियोंकी खिचावटसे बीचमें ही फिसल पड़ता है, फिर जाता है फिर फिसल जाता है। जब आत्माका एक भावसे एकतान होकर ध्यान किया जाता है तबही एकाग्र अवस्था होती है निरुद्ध अवस्थामें चित्त अपनी कारणीभूत प्रकृतिमें विलीन और छिपे हुए कामकी समान निश्चेष्ट होता है जले हुए डोरेकी समान केवल संस्कारभावको प्राप्त होता है उस समय उस चित्तमें कोई विसदृश परिणाम नहीं दीखता।आत्माके अस्तित्वसे ही उस समय पूर्णज्ञानवान् और आनन्दमय होताहै

निरुद्ध अवस्थामें चित्त प्रकृतिमें लीन होजाता है,परन्तु आत्मा के समीपमें उस प्रकृतिका काम समाप्त होजाता है, क्योंकि-इन्द्रियें फिर उसको नहीं चाहती हैं। वे उस समय घूमघाम कर अपने केन्द्रमें आकर खड़ी होगयी हैं।आत्मा उस समय प्रकृतिके स्वरूपको देखनेसे मुक्त है। प्रकृतिका काम भी निबटगया है, वह जो आत्मस्वरूपको भूलेहुए जीवात्माको क्रीडा करानेमें लगी हुई थी, जितने भी प्रकारका भोग है वह उसको करा रही थी, जितने प्रकारकी भी अभिव्यक्तियें और विकार हैं वे सब दिखा रही थी-वह सब समाप्त होजाता है। उस समय वह करुणामयी जिस मार्गसे आयी थी उसी मार्गसे लौटजाती है। जिन सकल क्रियाओंके द्वारा यह चि॰ की निरुद्ध अवस्था आकर प्राप्त होती है

तथा दूसरी चारों अवस्थायें दूर होजाती हैं और जीवनके कर्त्तव्य मार्गको भूलेहुए मनुष्य फिर देखपाते हैं, उन सब क्रियाओंके अभ्यास वा शिक्षाका नाम योगसाधना है। तात्पर्य यह है, कि चित्त और चित्तकी वृत्तियोंको निरुद्ध अवस्थामें लेआना ही योगका उद्देश्य है।

गृहस्थकी योगसाधना

बहुतसे लोगोंसे सुननेमें आता है, कि–यह तो हम मानते हैं, कि–योगसाधना करनी चाहिये, परन्तु हम गृहस्थ हैं, हमारे ऊपर स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बके पालनका भार है, गृहस्थीकी अनेकों कमियोंको पूरी करनेमें ही हमें बडे २ क्लेश भोगने पडते हैं, दूसरोंको सन्तुष्ट करनेके लिये ही हमें बडा परिश्रम करना पडता है, फिर हम योगसाधना कैसे करसकते हैं? प्रातःकाल उठकर बहुतसा समय तो घरके कामधन्धे करनेमें ही बीतजाता है, फिर दफ्तरमें या दुकान पर जाकर हाड धुनने पडते हैं, जब सायङ्कालको घरमें आते हैं तो स्त्रीकी यह लाओ वह लाओसे नाकमें दम रहता है, यदि घरमें कोई बालक बच्चा बीमार हो जाता है तो रातमें दो घडीको सोरहना भी कठिन होजाता है, ये सब झंझटें एक दिनकी नहीं हैं, प्रतिदिन लगी रहती हैं। उरद पर सफेदीकी समान भी सुख शान्ति वा अवकाश नहीं मिलता, ऐसी दशामें भला हम परलोकसाधना या योगसाधना कैसे करसकते हैं?

हम इस बातको सर्वथा ठीक नहीं मानसकते, २४घण्टेके दिनरात में थोडासा समय भी नहीं निकाला जासके,यह कोई बात नहीं है; यह जो दुःख जंजालकी कहानी सुनाई है वह तो आजन्म हमारे साथ है। यह दुःखाग्नि ही तो अज्ञानान्ध जीवके लिये कालका कोडा है, यदि इस वज्राग्निसे भी सावधान नहीं हुआ यदि अब

भी आत्मदर्शनका उपाय नहीं किया तो क्या करोड़ों जन्मों तक ऐसी ही घोर ज्वालामें भस्म होना चाहता है ? जरा ध्यान देकर तो देख, तेरे साथमें क्या जायगा ? अपने चारों ओरको दृष्टि डाल कर देख, प्रतिदिन कितने लोग अज्ञात देशसे आते हैं और कितने लोग अज्ञात स्थानको चले जाते हैं, ऐसे ही हमको भी यह सब ठाठबाट और कुटुमपरिवारको छोडकर जाना होगा। स्त्री, पुत्र, धन, रत्न आदि कुछ भी साथमें नहीं जायगा, तो फिर जन्म जन्ममें इस कष्टको पानेकी क्या आवश्यकता है ? जिससे अपनी मुक्ति होजाय, जिससे हम मायाके बन्धनको खोलसकें, जिससे दुःखका विनाश करके नित्य सुखको पासकें, उसका उद्योग करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?

स्त्री पुत्रादिको त्यागनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, घरमें रहकर ही योगसाधना होसकती है। गृहस्थीके सब कामधन्धे करतेहुए ही आरम्भकालकी योगशिक्षा होसकेगी, परन्तु कुछ मनुष्यताकी आवश्यकता है, पशुवृत्तिसे योगसाधनाका आरम्भ नहीं होसकेगा। योगसाधनाके लिये ऐसे तीन समय नियत करलो, कि-जिस समय तुम्हारे हाथमें अधिक काम न हो। उसके लिये अतिप्रातःकाल, सन्ध्याकाल और रातमें दो बजेका समय नियत कर लेना ठीक होगा। इन तीनों समयमें प्रायः किसीको भी बहुत अधिक काम नहीं होता है। अपनी दशाके अनुसार घरकी एक छोटीसी कोठरी या छोटीसी कुटिया नियत करलो। वहाँ दूसरे लोगोंका हरसमय आना जाना न रहे। उस घरको खूब साफ रक्खो, जिससे, कि-उसमें शुद्ध वायु आ जासके। अच्छे भाव और अच्छी रुचिको बढानेवाली तसवीरें उसकी दीवारोंमें लटका दो। योगसाधनाके समय उस घरको धूपसे महकादो। इस प्रकार एक सच्चे हिन्दूके नित्यकर्मके लिये एक स्थान चुनलो और

वहाँ बैठकर नियत समय पर योगसाधनाका अभ्यास करो। पहली पहल भोजनादिमें कुछ कमी करनी पड़ती है, फिर साधनामें कुछ आगेको बढ़जाने पर बहुत अधिक कसनेकी आवश्यकता नहीं रहती है। वृक्षकी पौधेकी दशामें ही चारों ओर बाड़ लगानी पडती है, बडा होजाने पर बाडकी कुछ आवश्यकता नहीं रहती।

साधनाकी पहली अवस्थामें सात्त्विक भोजन करना चाहिये। उसके लिये कुछ गरम अन्न, दाल, घी दूध, माखन और भाँति भाँतिके फल खाय। मत्स्य मांसका सेवन सर्वथा त्याग देय। बासी, जला, सडा, चरपरा, बहुत खट्टा, अधिक मिष्ट और भङ्ग आदि मादक पदार्थोंका सेवन न करे। चवेना न खाय। जल पानके समय लुचई कचौडी और चीले न खाय। अनेकों प्रकार के फल, मूल, मूँगकी दाल आदिका परिमित भोजन करे। ऐसा भोजन करनेवालेका चित्त प्रसन्न और शरीर नीरोग रहता है। सार यह है कि-देश, काल पात्रभेदसे निर्दोष, स्वच्छ, मधुररस वाला, चिकना (घीमें तर किया हुआ और जो तीक्ष्ण न हो) ऐसा भोजन खाय, कि-जिसको खाने पर या जितना खाने पर पेट फूलना आदिक कष्टदायक दशा न हो जाय। ऐसी दाल रोटी भाजी आदिको प्रेमके साथ खाय। भोजनका यही नियम घेरण्ड संहितामें बताया है।

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमुदराध्मानवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥

फिर भोजनके विषयमें यह भी कहा है, कि-

अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचालने ॥

जितनी भूख हो, अनुमानसे उसके चार भाग करके, उसमेंसे दो भागको अन्नसे, तीसरे एक भागको जल और दूध आदि तरल

पदार्थोंसे भरे और एक भाग वायुके सञ्चारके लिये खाली रक्खे, अधिक भ्रमण करना भी अच्छा नहीं होता है, अधिक भ्रमणका अर्थ है नित्य देश विदेशमें घूमते फिरना, अधिक बोलना भी अच्छा नहीं होता। प्रातःस्नान तो करना ही चाहिये, विदाहक पदार्थ, तेलमें बनाये हुए पदार्थ, हिंसा, द्वेष, कुटिलता, उपवास मिथ्या आचरण मिथ्या व्यवहार अहङ्कार, मोह, प्राणियों को पीड़ा देना, स्त्रीसङ्ग, अग्निसे तापना, अधिक लोगोंके साथ बातचीत और बैठना, अप्रिय आचरण और अधिक भोजन, इन सबको जितना भी छोड़ा जासके उतना ही अच्छा है। भगवद्गीता में लिखा है, कि—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

अपनी जठराग्नि सुखके साथ जितना पचासके उससे अधिक भोजन करनेवालेसे योगसाधना नहीं होसकती, क्योंकि-वह शरीर के व्याकुल होजानेके कारण चित्त और प्राण आदिको रोक नहीं सकता तथा अजीर्ण होकर ज्वर आदि भी होजाता है, ऐसे ही केवल उपवास करनेवालेसे भी योगसाधना नहीं होसकती, क्यों कि-भूखेकी चित्तवृत्ति एकाग्र नहीं होसकती और उसका शरीर भी क्षीण होकर अशक्त होजाता है। अधिक सोनेवाला भी योग साधना नहीं कर सकता, क्योंकि—निद्रा तमोगुणको बढ़ादेती है। ऐसे ही अधिक जागनेवालेसे भी योगसाधना नहीं हो सकती, क्योंकि—उसको योगाभ्यास करते समय अवश्य नींद आवेगी। तात्पर्य यह है, कि—योगीको अधिक विलास और कठोरता दोनों ही त्याग देनी चाहियें। उसको आहार विहार, कर्मचेष्टा, सोना और जागना सब ही नियमसे होना चाहिये।

बहुतसे ग्रन्थोंको देखनेका उलझनमें भी न पड़े। केवल कार्यसाधक सारभूत ज्ञानको पानेका ही उद्योग करे, क्योंकि-बहुतसी बातोंकी जानकारी भी योगमें विघ्न डालती है। यह भी जानलूँ, वह भी जानलूँ ऐसा करनेमें सहस्रों कल्पमें भी ज्ञेय पदार्थका ज्ञान नहीं होसकता, इसलिये योगके साधकको ज्ञानतृष्णामें नहीं पड़ना चाहिये।

ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेकी बड़ा आवश्यकता है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है वीर्यको धारण करना। जिसका विवाह होगया हो, वह बड़े नियमके साथ केवल पुत्रके लिये स्त्रीसमागम करे, क्योंकि-यह काम शरीर, मन और इन्द्रियोंकी शक्तिको घटाता है, इसलिये इससे दूर ही रहना चाहिये। शरीरमें जितनी भी धातुएँ हैं, उन सबका ही अन्तमें वीर्य बनता है। शरीरमें यदि वीर्य अटल अचल रहता है तो उसका नाम ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठा है। ब्रह्मचारी रहने पर मनुष्य चिरजीवी, बुद्धिमान्, विनयवान्, विद्वान् और परोपकारी एक बातमें कहें तो देवचरित्र होता है। ब्रह्मचारी के शरीरमें कोई रोग नहीं घुससकता, उसका शरीर पत्थरकी समान दुर्भेद्य होजाता है और यदि ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा न कीजाय तो मनुष्यका शरीर रोगोंका घर बनजाता है, अकालमृत्यु आकर ग्रसलेतीहै, इसलिये यदि योगक्रिया सीखनी हो तो इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

बहुतसे लोग कहते हैं, कि जो अभ्यास पड़गया है उसका छूटना बहुत ही कठिन है। परन्तु यह बात नहीं है। दो एक बार गिरसकते हो दश दिनको प्रतिज्ञाभङ्ग होसकता है यदि तुम्हारे मनमें दृढ़ता होगी और चेष्टा करोगे तो पहला अभ्यास छूटकर अवश्य ही नया अभ्यास होजायगा, उस अभ्यासके होजाने पर पहिली पशुवृत्तिका फिर ध्यान भी नहीं आवेगा, उन बातोंका प्रसङ्ग छिड़ते ही घृणा होने लगेगी।

मनको सदा पवित्र रखनेका उद्योग करना चाहिये । हिंसा, द्वेष, मिथ्या बोलना, इन बातोंको सर्वथा छोडदेना चाहिये । क्रमसे अभ्यास करना होगा । मन बडा ही जबरदस्त है, वह सदा इधर उधरको दौडने लगता है इसलिये खूब सावधान रहो असत् मार्गमेंको जानेलगे तो बलात्कारसे रोककर रक्खो। बहुतसे लोग कहते हैं कि-संसारमें रहकर ऐसा करनेसे गृहस्थीका काम नहीं चल सकता यह कहना भूल है । गृहस्थमें यदि मनुष्य सत्य बोले, जितेन्द्रिय हो और विशेष तृष्णा न करता हो तो महा-शान्ति रहती है, यश होता है और धन प्राप्त होता है ।

आसन ।

हमने जिस देश कालकी बात कही है, उस स्थान और समय में पहले एक आसनका अभ्यास करना होगा । योगशास्त्रमें बहुत तरहके आसन बताये हैं, उन सबोंको जाननेका हमें कोई प्रयोजन नहीं । हम यहाँ दो प्रधान आसनोंका वर्णन करेंगे वे दोनों ही सबको सीखने होंगे, जिसको जिसमें सुगमता पड़े वह उसका ही अभ्यास करलेय । नीचे लिखे किसीभी आसन का अभ्यास करना आरम्भ करो, परन्तु उसका अनुष्ठान पहले बताये हुए एकान्त स्थानमें करो और अभ्यासके समय चित्त को विश्वाधार अनन्तके अनन्त और महान् भावमें लगाए रहो तथा अहंज्ञानको मनसे दूर करदो । ऐसा करने पर आसनके कारणसे देहको दुःख वा अङ्गोंके दबनेका कष्ट नहीं होगा तथा शीघ्र ही आसनका जय होजायगा ।

अब आसन क्यों कियाजाता है,इस बातको जान रखना भी अच्छा है । योगसाधना करनेके समय मन और देह दोनोंका काम चलता है । चिरकाल तक एक ही ढङ्गसे बैठना पडता है । देह न हिले, न काँपे, वेदना न हो और एक प्रकारसे बैठे रहने

में कष्ट न हो, इसके ही लिये आसनका अभ्यास रक्खा गया है। एक बात और है, योगसाधनाके समय देहमें वायुकी भाँतिकी क्रिया होती है। जीवकी नसोंमें शक्तिप्रवाह नित्य चलता रहता है, इन नसोंकी स्वाभाविक गतिको सम्हाल कर नए मार्गमेंको लेजाना होगा, उस समय देहमें नया कम्पन प्रकट होगा। यह सब काम मेरुदण्डके मार्गमें ही होता है, इसलिये मेरुदण्ड जिस प्रकार रखनेसे यह काम सहजमें स्वच्छन्द और विना विपत्तिके ठीकर बनसके, उस प्रकारसे मेरुदण्डको रखनेके लिए ही आसनका अभ्यास करना पडता है। आसनके अभ्याससे मन स्थिर और देह नीरोग रहता है। आसनके अभ्यासके समय कुछ एक कष्ट अवश्य मालूम होगा, परन्तु अभ्यास होजाने पर वह बहुत ही सुखदायक मालूम होगा। जबतक आसन लगानेमें सुख न मालूम हो तब तक समझो, कि-अभी आसनका ठीकर अभ्यास नहीं हुआ है। हम जिन दो आसनोंका वर्णन करेंगे, उनमेंके एकका नाम सिद्धासन और दूसरेका नाम पद्मासन है।

सिद्धासन—

योनिं सम्पीड्य यत्नेन पादमूलेन साधकः।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेद्योगवित्सदा ॥
दृष्ट्या निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः।
विशेदवक्रकायश्च रहस्युद्वेगवर्जितः ॥

बायें पैरकी एडीसे अच्छे प्रकारसे और सावधानीके साथ लिङ्ग और गुदाके बीचके स्थानको दवाकर रक्खे, फिर दाहिने पैरकी एडीको इसप्रकार उपस्थके ऊपर रक्खे, कि-जिससे लिङ्ग नाल दबकर बन्द होजाय। फिर संयतचित्त, देह न हिले न टेढा हो इसप्रकार स्थिर होकर दृष्टिको दोनों भौंके मध्यमें जमावे, इसका ही नाम सिद्धासन है।

एतत् सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम् ।
येनाभ्यासवशात् शीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात् ॥
सिद्धासनं सदा सेव्यं पवनाभ्यासिभिः परम् ।

योगियोंका निश्चय है, कि–इस सिद्धासनसे बैठकर योगाभ्यास करने पर शीघ्र ही योगकी सिद्धावस्था प्राप्त होती है। जो वायुका साधन करते हैं, उनको इस सिद्धासनका अभ्यास करना चाहिए।

पद्मासन —

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा,
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अंगुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्,
एतद्व्याधिसमूहनाशनकरं पद्मासनं चोच्यते ॥

बाईं जङ्घाके ऊपर दाहिना पैर और दाहिनी जङ्घाके ऊपर बायाँ पैर रखकर दोनों हाथ उलटपुलट कर पीठकी ओरसे घुमातेहुए लाकर दाहिने हाथसे बायें पैरका अँगूठा और बायें हाथसे दाहिने पैरका अँगूठा मजबूतीसे पकड़े तथा छातीके ऊपर ठोडी रखकर नासिकाके अग्रभागको देखे, इसको ही पद्मासन कहते हैं।

अनुष्ठाने कृते प्राणः समश्चलति तत्क्षणात् ।
भवेदभ्यासने सम्यक् साधकस्य न संशयः ॥
पद्मासने स्थितो योगी प्राणापानविधानतः ।
पूरयेत्स विमुक्तः स्यात्सत्यं सत्यं हि पार्वति ॥

पद्मासनको अभ्यास होजाने पर प्राणवायु नाडीरन्ध्रमें समान भावसे बहने लगता है और प्राणायामके समय वायु शरीरमें सरल भावसे विचरता है। पद्मासनसे बैठकर यथाविधि प्राण और अपान वायुका रेचन पूरण आदि करनेपर सब बन्धनोंसे मुक्त होजाता है। सिद्धासनकी अपेक्षा पद्मासनका बाँधना सहज है। पद्मासनका अभ्यास स्त्री पुरुष सबोंके लिये अच्छा है। पद्मासनको

करके प्रायः सब ही काम करसकते हैं। जब आसन सिद्ध होजाय तब आसन करके बैठने पर मनमें एक स्थिरभावका सुख मालूम होता है, बहुत देर बैठनेसे भी कष्ट वा उकताहट नहीं होती। सिद्धासन हो चाहे पद्मासन हो, काठके आसन पर बैठकर न करे। कम्बल, मृगछाला, बाघाम्बर या गलीचे आदि पर बैठे।

मनको स्थिर करना

सब ही कहते हैं, कि–"साधनके समय अमुक विषयमें मनको स्थिर करके, अमुक विषयमें एकाग्र होकर" परन्तु मनको स्थिर वा एकाग्र किसप्रकार कियाजाय, यह बात, अच्छे प्रकारसे नहीं समझायी जाती। योगशास्त्र आदिमें मुद्राबन्धन आदि जो कष्टसाध्य उपाय लिखे हैं, उनका साधन करना गृहस्थके लिये बहुत ही कठिन है, इसलिये योगियोंने मनको स्थिर करनेकी और भी बहुतसी रीतियोंका आविष्कार किया है, उनमेंकी ही एक रीति हम यहाँ बतावेंगे।

हमने जो एक एकान्त–कोठरीकी बात कही है उस एकान्त कोठरीको धूप आदिसे सुगन्धित करके पद्मासन वा सिद्धासनसे बैठे फिर अपने नाभिकुण्डकी ओरको देखता हुआ बैठा रहे। चित्तको और कहीं न लेजाकर विश्वपति भगवान्‌की अनंत मूर्त्ति या अपने२ इष्टदेवके विग्रहका ध्यान करे, यदि ऐसा ध्यान न होसके तब भी कोई हानि नहीं है, परन्तु चित्तको बाहर न घूमने देय। इसमें और कोई यत्न नहीं करना पड़ता है केवल नाभिकुण्ड पर दृष्टि और मनको लगाकर बैठने पर ही मन स्थिर होजाता है। कितने समय बैठना चाहिये, यह निश्चय करके नहीं बताया जासकता पहले २ उतने समय बैठे, जितने समय बैठनेसे चित्तमें अधिक घबराहट न हो, क्रम २ से समय अपनेआप बढ़ता चलाजायगा।

क्रमसे श्वास छोटा होता चलाजायगा, कुम्भक होने लगेगा, फिर नाभिमेंसे नाद उठेगा और चित्तलय होजायगा। चित्तके लयका उपाय नाद है। जब चित्तलय होगा तो फिर चञ्चल नहीं होसकेगा। जब बाहरको नहीं जासकेगा तो आप ही चञ्चल नहीं होगा।

प्राणवायु नासिकाके मार्गसे श्वासप्रश्वासरूपमें सदा दश बारह अंगुल तक बाहरको आता है और फिर भीतरको लौट जाता है। आसन लगाकर नाभिकुण्डमें मनको स्थिर करतेहुए दृष्टि लगाकर बैठने पर यह वायु ऊपर से छोटा होता चलाजायगा। फिर शनैः२ अन्यान्य नसोंकी ग्रँथियोंमेंको झुककर नाभिकुण्डमें पहुँचजायगा। वायुके नाभिकुण्डमें पहुँचजाने पर फिर मन भी बाहरके विषयोंमें नहीं जासकता, इसलिये उस समय चित्त स्थिर होजाता है। वायु ही हमारा प्राण है, वायु ही इन्द्रियोंको बाहर लेजाकर विषयोंके आकारमें परिणत करदेता है। देखना, सुनना, खाना, छींकना, खाँसना आदि यह सब वायुका काम है, उस वायुके या वायुकी शक्तिके नाभिकुण्डमें स्थिर होजाने पर चित्त भी उस समय स्वयं स्थिर होजाता है। और एक काम होता है—

नाभ्याधारो भवेत्पद्मस्तत्र प्राणं समभ्यसेत्।
स्वयमुत्पद्यते नादो नादतो मुक्तिदस्ततः॥ (योगस्वरोदय)

नाभिकुण्डमें वायु वा प्राण जब बसने लगता है तब स्वयं ही नाद उत्पन्न होता है। नादके होने पर चित्तलय होजाता है। नाद उठनेके समयसे लेकर क्रम २ से नीचे लिखा सात प्रकारका शब्द सुनाई आता है। पहले पक्षीके छोटेसे बच्चेकेसा चूँ चूँ शब्द सुनाई आता है, इस शब्दके सुनाई आने पर साधकके रोमाञ्च खड़े होजाते हैं, शरीर पुलकित होजाता है, इस प्रथम अवस्थाको दूसरी अवस्था कह सकते हैं, क्योंकि—प्रथम अवस्थामें जो सूँ ऐसा शब्द होता है, उसका अनुभव बाहरी श्रवण इन्द्रियके द्वारा सब लोग नहीं करसकते; इसकारण द्वितीय अवस्थामें जो शब्द सुनाई

आता है उसको ही प्रथम कहदिया है। उसके बाद क्रम २ से निम्नलिखित अगले२ शब्द सुनाई आते हैं और साथ२ साधक को निम्नलिखित उत्तम भाव प्राप्त होता है। दूसरा शब्द विशुद्ध काँसीके छोटेसे घण्टेकेसा होता है, इस शब्दमें साधकका देह मानों निमग्न होजाता है। तृतीय शब्द शङ्खके शब्दकेसा होता है। इस शब्दके समय मस्तिष्कमें एकप्रकारका कम्पन होने लगता है, अचानक अधिक आनन्दका समाचार पाने पर जैसे मस्तिष्कमें कम्पन होकर वह मस्तकको घुमादेता है, इसमें भी वही दशा होजाती है। चौथा शब्द वाणीके मधुर शब्दके समान सुनाई आता है, उस समय साधकका शरीर अमृतरसमें स्नान किया हुआसा होकर एकप्रकारके अननुभूत अपूर्व आनन्दमें मग्न होजाता है,कण्ठकूप एकप्रकारका अत्यन्त ठण्डा, अतिमधुर,अतिपवित्र पहले कभी स्वाद न लियेहुए अपूर्व जलसे भरा हुआ होजाता है। यह जल सहस्रारमेंसे टपकाहुआ अमृत होता है। क्रमसे यह अमृत सकल देहमें व्याप्त होकर योगीके लावण्ययुक्त योगदेहका गठन करता है। पाँचवाँ शब्द पूरा वंशीकेसा शब्द होता है, उस समय साधकमें दूरका शब्द सुननेकी शक्ति आजाती है और श्रीभगवान् जिस रासरस विहारके लिये हमें नित्य पुकारते हैं, उसका अनुभव होने लगता है। छठा घर २ शब्द सुनाई आता है। इस समयसे साधकका मन आकाशमें पहुँचने लगता है। आकाश अनन्त और अपार है। प्राणप्यारे भगवान् अनन्त और सीमाशून्य हैं, यह ज्ञान उत्पन्न होजाता है, अनन्त धारणकी शक्ति उत्पन होना आरम्भ होजाती है। सातवाँ शब्द मेघके गर्जनेकी समान होता है, इस शब्दमें साधकका मन उसमें विलीन होजाता है इस अवसरपर ही चित्तलय होता है

बहुतसे लोग समझते हैं, कि-चित्तलय हुआ कि योगसिद्धि होगई, परन्तु ऐसा नहीं है, इसमें तो केवल मनका चञ्चलपन

दूर होता है और कुछ नहीं होता है। अतिचञ्चल बालकको बहला फुसलाकर पाठशालामें जानेका अभ्यास कराने पर ही उसको विद्याकी प्राप्ति नहीं होजाती है, किन्तु पाठशालामें जाने का अभ्यासमात्र होता है, उस समय यह आशा होने लगती है, कि-चेष्टा करने पर यह विद्या प्राप्त करसकेगा।

कितने दिनोंमें मन स्थिर होजाता है, यह निश्चय नहीं कहा जासकता, समयकी न्यूनाधिकता तो साधकके अभ्यास और यत्नके अनुसार होसकती है, हाँ यह निश्चय है, कि-नाभिकुण्डमें दृष्टि और मनको स्थापित करने पर मन स्थिर होजाता है। इस बातको साधक आप ही सहजमें समझ जायगा। नाभिकुण्ड उसको कहते हैं जहाँ नाल काटीजाती है।

❀ कुण्डलिनी ❀

चित्रिणी, गान्धारी आदि सहस्रों नाड़ियें हैं, हाकिनी, डाकनी लाकिनी असंख्यों शक्तियें वा अधिष्ठात्री देवियें हैं। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, ये मुख्य नाड़ियें हैं हं यं वं लं आदि बीज हैं। स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत आदि पद्म (कमल) हैं। इन सबके जटिल नाम, जटिल कहानी और जटिल भाषाका कथनरूप बड़ाभारा बोझा डालकर योगशिक्षाका आरम्भ करनेवालोंको हम उलझन में डालना नहीं चाहते, परन्तु उनका कुछ वर्णन ही न कियाजाय यह भी उचित नहीं है, क्योंकि-उन सबको लेकर ही योगसाधना चलसकती है। इसलिये जिस जगह जितना कहदेनेसे काम चल सकेगा तहाँ उतना ही कहदिया जायगा।

योगशास्त्रके मतमें देह एक सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है; इसमें कितनी शक्तियें, कितने स्थान और कितने व्यापार हैं उसको गिनाया, नहीं जासकता। जैसे बाहर चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और नदी पहाड़ोंको देखते हो, देहके भीतर भी ऐसा ही है। देहमें कितने

देवता हैं कितने असुर हैं,और क्या २ है,उसको हम न देखसकते हैं न जान सकते हैं । बाहरके विज्ञानसे दैहिक व्यापार वा देह के भीतरकी घटनाको जाननेका उपाय नहीं है,क्योंकि-जब हम मृत शरीरके टुकडे २ करके शारीरविज्ञान (डाक्टरी) सीखते हैं, उस समय देहकी गति प्रकृति आदि सब नष्ट होचुकता है। जीवित शरीरको काटनेमें भी यही बात होती है,क्योंकि-काटने के बाद शक्ति नष्ट होजाती है । मृत्यु आकर एकसाथ देहकी दशा बदलकर कुछका कुछ करदेता है,परन्तु हमारे मनकी एकाग्रता होजाने पर हम शरीरके भीतरकी सूक्ष्म २ गतियोंको समझ सकते हैं। जब मन बाहरके विषयोंको छोडकर देहके भीतर घुस जाता है तब ही हम इन गतियोंको जान सकते हैं।पहले हम जो मनको स्थिर करनेका उपाय कह आये हैं, उसमें सिद्धि होजाने पर अर्थात् साधनसे इस अवस्थाके पार होजाने पर देहके भीतर जो कुछ है,उसको देखनेकी शक्ति पानेके लिये चेष्टा करनी चाहिये। पहले प्राणको स्थिर करनेका उपाय बताया था, अब प्राणको एकाग्र करनेका उपाय बतावेंगे,प्राणको एकाग्र बिना किये ध्यान धारणा आदि कुछ भी नहीं होसकेगा । अधिक क्या कहें,देहके भीतर कहाँ क्या है,यह कुछ भी जाननेमें नहीं आवेगा, प्राणको एकाग्र वा प्राणका जय करनेसे पहले और एक काम करना पडता है, उसको कुण्डलिनीचैतन्य वा कुण्डलिनीजागरण कहते हैं।

योगके द्वारा साधकको बहिर्मुख प्राणको अन्तर्मुखी करना होगा । उसकी गतिको लौटाकर दूसरे मार्गसे चलना होगा, परन्तु जो योगी नहीं है, उसके लिये यह द्वार बन्द है,उस बन्द द्वारको खोलना ही कुण्डलिनीको जगाना है ।

योगियोंके मतमें मेरुदण्डके मध्यमें इडा और पिंगला नामके दो स्नायुसम्बन्धी शक्तियोंके प्रवाह हैं और मेरुदण्डकी मज्जाके मध्यमें सुषुम्ना नामकी एक शून्य नाली है । इस शून्य नालीके

नीचे कुण्डलिनीका आधारपद्म है, योगी कहते हैं कि-वह तिकोना है। योगियोंकी रूपक भाषामें इस स्थान पर कुण्डलिनी शक्ति कुण्डलाकार होकर विराजमान है। जिस समय यह कुण्डलिनी जागती है, उस समय वह इस शून्यनालीके मध्यमें वेगके साथ चढनेकी चेष्टा करती है और वह ज्यों २ एक २ पैडी पर चढ़ती जाती है त्यों २ मन मानो तयर२ में खिल उठता है। उस समय नाना प्रकारके अलौकिक दृश्य दीखते हैं और उस योग को नाना प्रकारकी अलौकिक शक्ति प्राप्त होजाती है। जिस समय वह कुण्डलिनी मस्तकमें पहुँचती है उस समय योगी पूर्णरूपसे शरीर और मनसे अलग होजाता है और उसका आत्मा अपने मुक्त भावको पाता है। हमको जान लेना चाहिये, कि-मेरुमज्जा एक विशेष प्रकारकी बनी हुई है। हिन्दीके ४के अक्षरको यदि लम्बा लिटाकर लिखा जाय तो,ऐसा दीखेगा और उसके दो भाग मध्य भागमें जुड़े हुए मालूम होंगे। ऐसे अक्षरको एकके ऊपर एक सजानेसे मेरुमज्जासी दीखने लगती है। इसका वाम भाग इडा और दाहिना भाग पिंगला है और जो शून्य नाली मेरुमज्जाके ठीक मध्यमेंको होकर गयी है वही सुषुम्ना है। जहाँ मेरुमज्जा कमरमेंके मेरुदण्डके एक भागमें कुछ हड्डियोंके बाद ही समाप्त होगई है। वहाँसे भी एक अतिसूक्ष्म डोरेकी समान पदार्थ बराबर नीचेको नमता चला आया है, सुषुम्ना नाली वहाँ भी है परन्तु यहाँ आकर अतिसूक्ष्म होगई है और नीचेकी ओरको इस नालीका मुख बन्द है। कमरकी नसोंके जालके पास तक यह नाली पहुँची हुई है। आजकलके शारीरविधान शास्त्र (Physiology) के मतमें इसका आकार तिकोना है, इन सब नाड़ियोंके जालका केन्द्र मेरुमज्जाके मध्य है, उनको योगियोंके भिन्न २ पद्मरूप कहसकते हैं।

योगी कहते हैं, कि-सबसे नीचे मूलाधारसे लेकर मस्तकके सहस्रदल पर्यन्त कितने ही स्नायुजाल वा चक्र हैं। यदि हम इन भिन्न२ चक्रोंको भिन्न२ स्नायुजाल मानलें तो आजकलके शारीर विधान शास्त्रके द्वारा अतिसहजमें योगियोंकी बातका भाव समझा जासकता हैं। हम जानते हैं, कि-हमारी नसोंमें दो प्रकारका प्रवाह है। उनमेंसे एकको अन्तर्मुखी और दूसरेको बहिर्मुखी, एकको ज्ञानात्मक और दूसरेको गत्यात्मक, एकको केन्द्राभिमुखी और दूसरेको केन्द्रापसारी कहाजासकता है। इनमेंसे एक प्रवाह मस्तिष्ककी ओरको सम्वाद लेजाता है और दूसरा मस्तिष्कमेंसे बाहरको संवाद लाता है, परन्तु ये सब ही प्रवाह परिणाममें मस्तिष्कके साथ जुडेहुए हैं। हमको यह भी जाने रहना चाहिये कि-सब चक्रोंमें सबसे नीचे मूलाधार है,मस्तकमेंका सहस्रदल पद्म तथा मूलाधारके ठीक ऊपरका स्वाधिष्ठान पद्म इन कई एककी बातको ध्यानमें रखनेकी बहुत आवश्यकता है। हमको पदार्थ विज्ञानसे एक बात और भी लेनी होगी। हमने विद्युत् तथा विद्युत्से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य शक्तियोंकी बात भी सुनी है विद्युत् क्या वस्तु है, इसके ठीक स्वरूपको कोई नहीं जानता, हाँ हम इतना ही जानते हैं, कि-विद्युत् एक प्रकारकी गति है

जगत्में नानाप्रकारकी गतिका प्रकाश देखते हैं, अब देखना चाहिये,कि-तडित् नामक गतिके साथ उनका क्या भेद है ? मानलो, कि-एक टेबिल इस तरहसे चलाई जाती है, कि-उस के परमाणु भिन्न २ दिशाओंमेंको चलायमान होते हैं। यदि इस टेबिलके सब परमाणु निरन्तर एक ही ओरको चलायेजायँ तो वही विद्युत शक्तिरूपमें बदलजायगी। सब परमाणुओंके एक ओरको गतिशील होने पर उसको ही विद्युत्की गति कहते हैं। यह घरमें जो पवनपुञ्ज है, उसके सब परमाणु यदि एक क्रमसे एक ओरको चलादियेजायँ तो वह एक महाविद्युताधार यंत्र(बैटरी)

बनजायगा। जो स्नायुकेन्द्र श्वासप्रश्वासके यंत्रोंको नियममें चलाता है प्रत्र स्नायुप्रवाहोंके ऊपर भी उसका ही प्रभाव है। यह केन्द्र वक्षःस्थलके ठीक विपरीत दिशामें मेरुदण्डरूपसे स्थित है। वह श्वासप्रश्वासके यंत्रोंको नियमसे चलाता है तथा दूसरे जो स्नायुचक्र हैं उनके ऊपर भी कुछ प्रभाव रखता है।

हम जो कुछ देखते हैं, कल्पना करते हैं अथवा जो कोई स्वप्न देखते हैं, उस सबका ही अनुभव हमें आकाशमें करना पडता है। यह दृश्यमान आकाश जो साधारणरूपसे देखनेमें आता है इसका नाम महाकाश है। योगी जब दूसरेके मनका भाव प्रत्यक्ष करके देखता है अथवा अलौकिक वस्तुओंको देखता है, उस समय इन सबको वह चित्ताकाशमें देखता है और जब हमारे अनुभवका विषय शून्य होता है,उस समय आत्मा अपने स्वरूप में प्रकाशित होता है, उस समय उसका नाम चिदाकाश है। जब कुण्डलिनी शक्ति जागकर सुषुम्ना नाडीमें प्रवेश करती है उस समय जिन विषयोंका अनुभव होता है वह सब चित्ताकाशमें ही होता है। जिस समय वह इस नालीकी अन्तिम सीमा-मस्तिष्कमें पहुँचता है उस समय चिदाकाशमें एक विषयशून्य ज्ञानका अनुभव होता है। हम यदि बिजलीका दृष्टान्त दें तो देखते हैं, कि-मनुष्य केवल तारके द्वारा किसी बिजलीके प्रवाहको एक स्थानसे दूसरे स्थान परको चलासकता है, परन्तु प्रकृति तो अपने महा–महा शक्ति प्रवाहको चलानेमें किसी तारको सहायता नहीं लेती है, इससे ही ठीक २ समझ सकते हैं, कि–किसी प्रवाहको चलानेके लिये तारकी वास्तवमें कोई आवश्यकता नहीं है, हाँ केवल हम उसके व्यवहारको छोडकर काम नहीं करसकते, इस लिये हमको तारकी आवश्यकता पड़ती है।

हम बाहर जिस किसी वस्तुको भी देखते वा सुनते हैं सब ही पहले शरीरके भीतर और फिर मस्तिष्कमें जाकर पहुँचती हैं।

और उसके बाद जो कुछ क्रिया होती है वह सब मस्तिष्कके भीतरसे बाहर आती है। मेरुमज्जाके मध्यमें जो ज्ञानात्मक और कर्मात्मक नसोंके दो गुच्छे हैं, वही योगियोंकी इड़ा और पिङ्गला नाडी हैं। इन नाड़ियोंके भीतरको होकर वह दोनों प्रकारका शक्तिप्रवाह आयाजाई करता है। परन्तु बात यह है, कि-किसी प्रकारके मध्यवर्त्ती पदार्थके बिना भी मस्तिष्कोंमें चारों ओरको भिन्न२ संवादोंका भेजना और नाना स्थानोंसे इस मस्तिष्कमेंको भिन्न२ सम्वादोंके आनेका काम क्यों नहीं होगा? प्रकृतिमें तो ऐसी घटना होती देखते हैं। योगी कहते हैं, कि–इसमें सफलता होने पर भौतिकबन्धनके पार होसकता है, परन्तु इसमें सफलता होनेका उपाय क्या है? यदि मेरुदण्डमेंकी सुषुम्नाके भीतरको होकर स्नायुके प्रवाहको चलाया जासके तब ही यह सफलता होसकती है। मनने ही स्नायुजालको बनाया है उसको ही, इस जालको काटकर, किसी प्रकारकी सहायता न चाहते हुए अपना काम चलाना होगा, तब ही सब ज्ञान हमारे वशमें होगा, फिर देहका बन्धन नहीं रहेगा। इसलिये सुषुम्ना नाड़ीको वशमें करनेकी हमें बहुत ही आवश्यकता है। यदि हम इस शून्य नालीके मध्यमें होकर नाड़ीजालकी सहायताके बिना ही मानसिक प्रवाहको चला सकें, तब ही यह सफलता होगी। योगी कहते हैं, कि–इस बातका सिद्ध होना कुछ असम्भव नहीं है।

साधारण मनुष्योंके भीतर सुषुम्ना भीतरको बँधीहुई है, उससे कोई काम नहीं होसकता। योगी कहते हैं, कि–इस सुषुम्नाके द्वारको खोलकर उसके द्वारा स्नायुप्रवाहको चलानेको नियमित रीति है। उसके साधनमें सफल होजाने पर स्नायुप्रवाह उसमेंको होकर चलसकता है। जिस समय कोई बाहरी विषय किसी केन्द्रमें जाकर धक्का लगाता है, उस समय एक प्रतिक्रिया होती

है, इस प्रतिक्रियाका फल भिन्न २ स्थलोंमें भिन्न २ प्रकारका देखते हैं। हमारे शरीरके भीतर कितने ही भिन्न २ शक्तियोंके केन्द्र हैं, उनको दो भागोंमें बाँटा जासकता है। उनमेंसे एक प्रकारको ज्ञानरहित गतियुक्त केन्द्र और दूसरे प्रकारको चैतन्यमय केन्द्र कहते हैं। पहले प्रकारकी प्रतिक्रियाका फल केवल गति है, दूसरे प्रकारके केन्द्रमें पहले अनुभव और फिर गति होती है। बाहरसे जो हमारे ऊपर घात होते हैं उनका प्रतिघात ही सकल विषयोंका अनुभव है। अब यह प्रश्न होता है, कि-स्वप्नमें नाना प्रकारका अनुभव हमें कहाँसे होता है? उस समय तो बाहरसे हमारे ऊपर कोई घात नहीं लगाता है, इसलिये निश्चय होता है, कि-जैसे गत्यात्मक क्रियाएँ शरीरके भिन्न २ केन्द्रोंमें स्थित हैं, तैसे ही अनुभवरूप क्रियाएँ भी शरीरके किसी न किसी स्थानमें निःसन्देह अव्यक्त रूपसे रहती हैं। मानलो, कि-मैंने एक नगर देखा, वह नगर नामकी जो एक बाहरी वस्तु है, उसमेंसे हमारे भीतर जो एक घात लगा, उसका ही भीतरसे प्रतिघात अर्थात् प्रतिक्रिया होती है, उसके द्वारा हम इस नगरका अनुभव कर सकते हैं अर्थात् बाहरी वस्तुके द्वारा हमारे स्नायुसमूहमें जो एक प्रकारकी क्रिया होती है उससे ही मानो मस्तिष्कके भीतर एक प्रकारकी क्रिया होकर उसमेंके परिमाणु चलायमान होजाते हैं। हम देखते हैं बहुत दिन बीतजाने पर भी वह नगर हमारे अनुभवमें आता है। स्मृति भी स्वप्नके समान एक प्रकारका व्यापार है। हाँ इसमें स्वप्नसे कुछ कम शक्ति होती है, परन्तु बात यह है कि-वह मस्तिष्कके भीतर जो साधारणसा कम्पन उत्पन्न करदेता है वह इस पहले उत्पन्न हुए विषयानुभवसे ही होता है-यह तो कभी कहा ही नहीं जासकता, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि-इन विषयोंके अनुभवसे उत्पन्न हुए सब संस्कार

शरीरके किसी न किसी स्थानमें सञ्चित रहते हैं वे ही शरीरके भिन्न २ केन्द्रमें प्रतिक्रियाके द्वारा स्वप्नका अनुभवरूप कोमल प्रतिक्रियाको उत्पन्न करते हैं। जहाँ यह सब संचित विषयानुभवके संस्कार रहते हैं उसको मूलाधार कहते हैं और इस स्थान में जो क्रियाशक्ति संचित रहती है उसको कुण्डलिनी कहते हैं। शरीरके भीतरकी सब गतिशक्तियें इस स्थानमें ही कुण्डलीकृत होकर संचित रहती हैं। क्योंकि—बाहरी वस्तुओंकी चिरकाल तक चिन्ता और आलोचनाके बाद यह मूलाधार चक्र गरम होने लगता है। यदि इस कुण्डलिनी शक्तिको जगाकर ज्ञातदशामें सुषुम्ना नालीके भीतरको लेजाकर एक केन्द्रमेंसे दूसरे केन्द्रमें पहुँचा दिया जाय तो एक अतितीव्र प्रतिक्रिया होने लगती है। तब कुण्डलिनी शक्तिका अतिसाधारण भाग किसी नसके भीतर को बहने लगता है, तब उसको स्वप्न वा कल्पना कहते हैं, परन्तु जब चिरकाल तक कियेहुए ध्यानके बलसे यह सञ्चित शक्ति सुषुम्ना मार्गमें भ्रमण करती है, उस समय जो प्रतिक्रिया होती है वह स्वप्न कल्पना अथवा इन्द्रियके ज्ञानकी प्रतिक्रियासे बहुत श्रेष्ठ होती है। इसको ही अतीन्द्रिय अनुभव कहते हैं, इसमें सकल ज्ञानातीत वा पूर्णचैतन्य अवस्था प्राप्त होती है। जब वह सब ज्ञानोंके और सब अनुभवोंके केंद्रस्वरूप मस्तिष्कमें जाकर पहुँचती है तब सम्पूर्ण मस्तिष्कमेंसे एक महाप्रतिक्रिया होती है। शरीरमें का हरएक अनुभव करनेवाले भाग और अनुभववाले हरएक परमाणुमेंसे प्रतिक्रिया होने लगती है, इसका फल होता है ज्ञानालोकका प्रकाश वा आत्मानुभव। उसी समय हमको इन्द्रियज्ञान और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप जगत्के सकल कारणोंका यथार्थस्वरूप ज्ञान होजायगा, उस समय ही हमको पूर्ण ज्ञान प्राप्त होजायगा, कारणका ज्ञान हुआ, कि—कार्यका ज्ञान अवश्य ही

आजायगा । इससे मालूम हुआ, कि—कुण्डलिनीको जगाना ही तत्त्वज्ञान है, यही ज्ञानतीत अनुभव और आत्मानुभवका एक मात्र उपाय है ।

इस कुंडलिनीके उद्बोधन वा जागरणके अनेकों प्रकारके उपाय हैं—हम इसकी एक बड़ी ही सहज रीति बतावेंगे, कि—जिसके द्वारा गृहस्थयोगी सहजमें ही सिद्धि पासकेंगे, परन्तु उसको बताने से पहले षट्चक्रके विषयकी संक्षिप्त आलोचना करेंगे, क्योंकि—नाड़ीचक्र वा पात्रोंको बिनाजाने काम नहीं चलसकता ।

षट्चक्र

मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे,
मध्ये नाडी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ।
धुत्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः स्कन्दमध्याच्छिरस्था,
वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमे स्याज्ज्वलन्ती ॥

मेरुदण्डके बाहर बाईं ओर इड़ा और दाहिनी ओर पिङ्गला तथा मेरुदण्डके बाहर इन दोनों नाडियोंके मध्यमें सुषुम्ना नामकी नाडी है, नाड़ी शब्दसे यहाँ स्नायु वा धमनी (नस) लीजायगी । सुषुम्ना नाडी मूलाधार कमलके मध्यभागसे सहस्र दल कमलमेंके परमशिवपर्यन्त फैली हुई है । सुषुम्नाके मध्यमें जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म छिद्र है, उसमेंको होकर वज्रनाडी मस्तक पर्यन्त चलीगई है ।

तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या,
लूतातन्तूपमेया सकलसरसिजान्मेरुमध्यान्तरस्थान् ।
भित्त्वा देदीप्यते तद् ग्रथनरचनया शुद्धबुद्धिप्रबोधा,
तस्यान्तर्ब्रह्मनाडी हरमुखकुहरादादिदेवान्तरस्था ॥

वज्रनाडीके मध्यमें एक ऐसा सूक्ष्म छिद्र है, कि-योगियोंके सिवाय और लोगोंकी कल्पनामें भी नहीं आसकता, उसके मध्यमें मकडीके

जालेकी समान सूक्ष्म चित्रिणी नाडी है, चित्रिणी नाडी कुण्ड-लिनीसे दमकती रहती है, इस नाडीका ज्ञान योगीके सिवाय दूसरोंको नहीं होता है और वह नाडी प्रणवमे विलसित है। सुषुम्नामें जो छः चक्र हैं, चित्रिणी नाडी मध्यमेंके छिद्रमार्गमेंसे होकर उन सब मार्गोंका भेदन करती हुई शोभा पारही है। चित्रिणीके मध्यभागमें ब्रह्मनाडी है, वह मूलाधारसे सहस्रार पर्यन्त चलीगई है

ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशः
ग्रन्थिस्थानं तदेतद्वदनमिति सुषुम्नाख्यनाड्याऽलपन्ति ॥

ब्रह्मनाडीके मुखमें ही ब्रह्मद्वार मूलाधार पद्म है। यहांसे नित्य अमृतकी धार टपकती रहती है और यह स्थान ही पद्मकी ग्रन्थि-रूप है, योगियोंके मतमें यह ब्रह्मद्वार ही सुषुम्ना नाडीका मुख है।

मूलाधारपद्म—

अथाधारपद्मं सुषुम्नास्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम्।
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥

गुदाके ऊपर और लिङ्गके नीचेका भाग इन दोनों के ठीक बीचमें आधारपद्म है, यह पद्म सुषुम्ना नाडीके मुखमें मिला हुआ है, यह कुण्डलिनी आदिका आधार है, इसलिये इस को मूलाधारपद्म कहते हैं। पद्मको चक्र भी कहते हैं। यह पद्म लाल रङ्गका, चार पत्तोंवाला और नीचेको मुख किये हुए खिल रहा है, इसके चारों पत्तों पर व, श, ष, स हैं और तपेहुए सोने की समान दमकरहा है।

अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासिशूलाष्टकैरावृतन्तत्।
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं तदन्तः समास्ते धरायाः स्वबीजम्।

मूलाधार कमलके मध्यमें परमदीप्तिमान् चार कोनोंवाला धरा चक्र है, उसके सब ओर आठ शूल बनेहुए हैं, उसका रङ्ग पीला

और बिजलीकी समान कोमल तथा उज्ज्वल है इस चक्रके मध्यमें 'लं' यह पृथ्वी बीज शोभा पारहा है।

> वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थम्,
> कोणन्तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
> कन्दर्पो नाम वायुर्विलसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्,
> जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः॥

वज्रनामक नाडीके मुखस्थानमें मूलाधार कमलकी कलीके भीतर त्रैपुरनामका एक तिकोना यन्त्र है, यह यन्त्र बिजलीकी समान चमकदार और कोमल है। इस यन्त्रके मध्यमें कन्दर्प नामक वायु नित्य विराजमान है इस यन्त्रके भीतर जीवात्मा रहता है। जीवात्मा गुडहलके फूलसे भी अधिक लाल और करोडों सूर्यकी समान प्रकाशवान् है।

> तस्योर्ध्वे बिसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी,
> ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं संछादयन्ती स्वयम्।
> ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यद्भासया भासते।
> सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यं प्रबोधोदया॥

इस त्रिकोण यन्त्रमें स्वयम्भू लिङ्गके ऊपर मृणाल (कमल-नाल) के तारकी समान अतिसूक्ष्म सर्पके आकारकी कुलकुंडलिनी अपने मुखको फैलाकर ब्रह्मद्वारको रोकरही है, कुंडलिनीके मध्यमें विद्युत्समूहकी समान त्रिगुणमयी प्रकृति रहती है, उसके दमकते हुए प्रकाशसे सकल ब्रह्माण्डकटाह प्रकाशित होरहा है। यहाँ सत्त्वगुणका काम होता है। यह जो एकके बाद एक पद्मका वर्णन किया है, ये गुथे हुए कमलके फूलोंकी समान है।

मूलाधार कमलमेंसे नादरूप वर्ण उठकर हृदयमेंको जाता है, इसलिये कुण्डलिनी पंचाशद्वर्णरूपिणी है। इस कुण्डलिनीका नित्य ध्यान करनेसे जीवका अज्ञानान्धकार दूर होता है और

कुण्डलिनी जागती है, इसका वर्णन आगे करेंगे, पहले कुछ चक्रों की बात और कहे देते हैं।

स्वाधिष्ठानपद्म—

सिन्दूरपूररुचिरारुणपद्ममन्यत्सौषुम्नमध्यघटितं ध्वजमूलदेशे ।
अङ्गच्छदैः परिवृतं तडिदाभवर्णैर्बाद्यैः सबिन्दुलसितैश्च पुरंदरान्तैः ॥
अस्यान्तरे मखिलसद्विशदप्रकाशमंभोजमंडलमथो वरुणस्य तस्य।
अर्धेन्दुरूपलसितं शरदिन्दुशुभ्रं वङ्कारबीजममलं मकराधिरूढम् ॥

लिङ्गकी जडमें सुषुम्नाके मध्यमें जो चित्रिणी नामकी नाडी है, उसमें सिन्दूरकी समान लाल२ छः दलवाला बिजलीकी समान चमकता हुआ एक चक्र है, उसका नाम स्वाधिष्ठान पद्म है। उसके छः दलोंमें क्रमसे बिजलीकीसी चमकवाले ब, भ, म, य, र, ल, ये छः वर्ण हैं। इस पद्ममें अर्धचन्द्राकार स्वेत वरुणचक्र वा वरुणका जलमण्डल है और उसके मध्यमें 'वं' यह वरुण बीज स्थित है। यह रजोगुणका स्थान है।

मणिपूरपद्म—

तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदललसिते पूर्णमेघप्रकाशे,
नीलांभोजप्रकाशैरुपकृतजठरे डादिफान्तैः सचन्द्रैः।
ध्यायेद्वैश्वानरस्यारुणमिहिरसमं मण्डलं तत्त्रिकोणं,
तद्बाह्ये स्वस्तिकाख्यैस्त्रिभिरभिलपितं तत्र वह्नेः स्वबीजम् ॥

उस स्वाधिष्ठानपद्मके ऊपरके भागमें नाभिके नीचे एक नसोंका जाल वा चक्र है, इसको ही मणिपूरपद्म कहते हैं। इसके दश दल हैं, उन दशों दलोंमें क्रमसे गाढी घनघटाकी समान नीलवर्ण ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ ये वर्ण हैं। इस पद्ममें अग्निका त्रिकोण मण्डल है और उस मण्डलमें 'रं' यह अग्निका बीज स्थित है। यह तमोगुणका स्थान है।

अनाहतपद्म—

तस्योर्ध्वे हृदि पंकजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्ज्वलं,
काद्यैर्द्वादशवर्णकैरुपहितं सिन्दूररागान्वितैः।
नाम्नानाहतसंज्ञकं सुरतरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं
वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोणशोभान्वितम्॥
तन्मध्ये पवनाक्षरञ्च मधुरं धूमावलीधूसरम्,
ध्यायेत्पाणिचतुष्टयेन लसितं कृष्णाधिरूढं परम्।
तन्मध्ये करुणानिधानममलं हंसाभमीशाभिधम्
पाणिभ्यामभयं वरञ्च विदधल्लोकत्रयाणामपि॥

इस मणिपूर नामक नाभिचक्रके ऊपरके भागमें बिजयसारके फलकी समान उज्वल बारह दलका चक्र है। इसका नाम अनाहत पद्म है। इसके बारहों दलोंमें क्रमसे सिन्दूरके रङ्गके क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ये बारह वर्ण हैं, इस पद्ममें धुमैले रङ्गका छःकोनेवाला वायुमण्डल है और उस मण्डलमें, यं, यह वायुबीज स्थित है, इस अनाहत चक्रमें वायुशून्य स्थानमें दीपककी स्थिर लौकी समान जीवात्मा शोभायमान है।

विशुद्धपद्म—

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलं धूमधूम्रावभासं।
स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिलसितैर्दीपितं दीप्तबुद्धेः॥

कण्ठमें सोलह दलवाला विशुद्ध नामका पद्म है, यह पद्म धुमैले वर्णका है। इसके सोलहों दलोंमें क्रमसे लाल रङ्गके अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, ये सोलह स्वर हैं। इसमें हं बीज और चन्द्रमण्डल स्थित है।

आज्ञापद्म—

आज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशं,
हक्षाभ्यां केवलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम्।

एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम्,
योनौ तत्कर्णिकायामितरशिवपदं लिङ्गचिन्हप्रकाशम् ॥
विद्युन्मालाविलासं परमकुलपदं ब्रह्मसूत्रप्रबोधम्,
वेदानामादिबीजं स्थिरतरहृदयश्चिन्तयेत्तत्क्रमेण ॥

दोनों भौंके मध्यमें एक दो दलका चक्र है, उसका नाम आज्ञा पद्म है। यह पद्म चन्द्रमाकी समान श्वेत है और दोनों दलोंमें ह, क्ष, यह दो अक्षर हैं। इस द्विदल आज्ञापद्मके मध्यभागमें सूक्ष्मरूप मन स्थित है। कर्णिका बीजकोष में पुरुष और बिजलीकी मालाकी समान दमकती हुई शक्तिका स्थान तथा ब्रह्मनाडीके प्रकाशक प्रणव (ॐ) का स्थान है।

तदन्तश्चक्रेऽस्मिन्निवसति सततं शुद्धबुद्धान्तरात्मा,
प्रदीपाभज्योतिः प्रणवविरचनारूपवर्णप्रकाशः।
तदूर्ध्वे चन्द्रार्धस्तदुपरि विलसद्बिन्दुरूपी मकार-
स्तदाद्यो नादोऽसौ बलधवलसुधाधारसन्तानहासी ॥

इस आज्ञापद्मके अन्तश्चक्रमें (भौंसे कुछ ऊपरके भागमें) विशुद्धज्ञान और ज्ञेयस्वरूप अन्तरात्मा स्थित है। ओङ्कारके ऊपर अर्धचन्द्र और उसके ऊपर बिन्दु तथा बिन्दुके आदिभाग में नाद विराजमान है।

सहस्रार पद्म—

तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशम्,
विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णपूर्णेन्दुशुभ्रम्।
अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकलाकान्तकिञ्जल्कपुञ्जम्,
अकाराद्यैर्वर्णैः प्रविलसितवपुः केवलानन्दरूपम् ॥

इस आज्ञाचक्रके ऊपरके स्थानमें शङ्खिनी नाडीके मस्तक पर जो शून्याकार स्थान है, उस स्थानमें विसर्ग शक्ति है।

इस शक्तिके नीचे प्रकाशमान सहस्रदल कमल विराजमान है।

वह पूर्ण चन्द्रमाकी समान श्वेत है,नीचेको मुख कियेहुए खिल-रहा है,बड़ा ही मनोहर है और उसके केसर प्रातःकालके सूर्यकी समान दमकरहे हैं। इस पद्ममें,अकार आदि पचास वर्ण हैं और नित्यानन्दस्वरूप है।

समास्ते तत्रान्तः शशपरिरहितः शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः,

स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासः।

त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपम्,

तदन्तः शून्यन्तत्सकलसुरगुरुं चिन्तयेच्चातिगुह्यम् ॥

इस सहस्रदल कमलके मध्यमें निष्कलङ्क चन्द्रमा और उसकी चाँदनी विराजमान है। चन्द्रमाकी सुधाराशि हास्यकी समान शोभा पारही है। उसके मध्यमें बिजलीकी समान त्रिकोण यन्त्र तथा उस यन्त्रके मध्यमें देवताओंका गुरुरूप परमगोपनीय शून्य स्थान है।

सुगोप्यं तद्यत्नादतिशयपरमामोदसन्तानराशेः

परं कन्दं सूक्ष्मं शशिसकलकलाशुद्धरूपप्रकाशम्।

इह स्थाने देवः परमशिवसमाख्यानसिद्धप्रसिद्धिः।

स्वरूपी सर्वात्मा रसविसरमितोऽज्ञानमोहान्धहंसः ॥

यह शून्य स्थान परम आनन्दभोगका मूल है, अत्यन्त सूक्ष्म और पूर्णचन्द्रमाकी समान प्रकाशवान् है। गगनरूपी परमात्मस्वरूप परमशिव यहाँ शोभायमान है, वह परम आनन्दस्वरूप और जीवोंके मोहान्धकारके नाश करनेका एकमात्र हेतु है।

शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणाः,

लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे ॥

पदं देव्या देवी चरणयुगलानन्दरसिकाः।

मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम् ॥

यहाँ जो परमशिवका वास कहा है वह शैवोंके लिये है, इस स्थानको ही वैष्णव परमपुरुष श्रीहरिका स्थान कहते हैं, इसको ही देवीके चरणोंके भक्त शक्तिका स्थान और कितने ही ऋषि इसको प्रकृति पुरुषका स्थान कहते हैं तात्पर्य यह है, कि-यह परमब्रह्मका स्थान है, सब ही अपने २ इष्टदेवको परमब्रह्म-स्वरूप मानते हैं ।

सहस्रार पद्ममें अमा नामकी षोडशी चन्द्रकला है, यह कला प्रातःकालके सूर्यकी समान दमकती हुई और कमलनालके तारके सौवें भागकी समान सूक्ष्म है, यह बिजलीकी समान कोमल स्वयं प्रकाशमान और अधोमुख है। इस अमा-कलाके भीतर निर्वाणकला नामक और एक कला है, वह केशके अग्रभागके हजारवें भागकी समान सूक्ष्म और बारह आदित्योंकी समान प्रकाशमयी है । इसको ही महाकुण्डलिनी कहते हैं। इस निर्वाणकलाके भीतर परमनिर्वाण शक्ति रहती है। परमनिर्वाण शक्ति करोड़ों सूर्यकी समान दमकती है। यह प्रणवगर्भा है और योगियोंके हृदयोंमें तत्त्वज्ञानके साथ आनन्द देती है. परम निर्वाणशक्तिके भीतर निर्मल, नित्यानन्दस्वरूप, योगियों के ही जाननेमें आनेवाला परमात्मस्थान है, कोई इस स्थानको परमशिवका स्थान, कोई ब्रह्मपद, कोई विष्णुपद, कोई, हंसपद और कोई मोक्षपदका द्वाररूप कहते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं, कि-जिनको पद्म नामसे कहा है, वे सब स्नायुचक्र (नसोंके गुच्छे) हैं, ये स्नायुचक्र इतने सूक्ष्म हैं कि-ध्यानमें ही नहीं आ सकते, इसलिये भावनाके समय चार अंगुलके कल्पना करके ध्यान कियाजाता है और इन सब पद्मोंके मुख नीचेको हैं, परन्तु ध्यानके समय इन सबको ऊर्ध्वमुख मान कर चिन्तवन करे ।

कुण्डलिनीको जगाना

पहले जिस एकान्त कोठरीकी बात कही है, उसको धूप आदिसे सुवासित करके उसमें सिद्धासन वा पद्मासन लगाकर बैठे। कुंडलिनीको जगाना कोई अद्भुत घटना नहीं है, वह एक मानसिक क्रिया है। तुमने मेंटल टेलीग्राफ वा मन ही मनमें बिजलीके द्वारा समाचार पहुँचाने की बात सुनी होगी, वह जिस प्रकार एक मानसिक क्रिया है, ऐसे ही यह भी कुछ २ वैसी ही मानसिक क्रिया है, वह बाहरी जगत्की क्रिया कुछ सहज है और यह अन्तर्जगत्की क्रिया उससे कुछ कठिन है।

केवल ध्यानके द्वारा देहमेंके शक्तिकेन्द्रको या वायवी शक्तिको ऊपरको उठाना होगा अर्थात् चिन्तवनके द्वारा प्राण अपान आदि दश प्राणोंको देहमें अन्य सब शक्तियोंके सहित शक्तिकेन्द्र कुण्डलिनीमें लेजाना होगा। जिस समय इडा पिङ्गलाके द्वारा बाहर नहीं आसकता है, उस समय सुषुम्नाके मार्गसे उठकर चक्रभेद करता है। यह काम क्रमशसे करना पडता है। बहुतसे लोग कहते हैं कि—किसी भी उपायसे कुण्डलिनीको जगालेने पर सहजमें ही सहस्रारमें पहुँचजाते हैं। वास्तवमें जिन्होंने यह साधना की है वे जानते हैं, कि-ग्रंथमें ऐसी बातें लिखी होने पर भी उनका होना कठिन होता है। एक चक्रको भेदकर दूसरे चक्रमें जाना होता है। तहाँसे ऊपरको उठानेकी रीति यदि न मालूम हो तो उस स्थानसे ही गिरजाता है। यदि एकवार चक्रभेदका अभ्यास होजाय तो कुण्डलिनीके जागने पर तत्काल सहस्रारमें पहुँचता है। अभ्यासके समय एक२ करके चक्रको भेदनेका नियम ही ठीक है। आसन लगाकर मेरुदण्डको जैसा रखने पर कुण्डलिनीको जगानेमें सुभीता हो तैसा ही रक्खे, परन्तु आसन ठीक होना चाहिये।

प्रथमसे जिसप्रकार अभ्यास करना चाहिये वही यहाँ बताया गया है। आसनको ठीक करके बैठकर कुण्डलिनीका ध्यान करे अर्थात् अन्य सब चिन्ताओंको त्याग कर नीचे वर्णन कियेहुए कुण्डलिनीके रूपका ध्यान करे। कितनी देर ध्यान करना होगा, यह ठीक नहीं बताया जासकता, हाँ जितनी देर ध्यान करनेमें तुम्हारा मन तन्मय रहे तबतक ध्यान करो। प्रथम ध्यानके समय तन्मय होनेसे पहले मन दूसरी चिन्ताओंको लेकर बैठना चाहेगा, इस लिये हमने पहले मनको स्थिर करनेका उपाय कह दिया है। उस साधनामें सिद्धि पाकर यह काम करना चाहिये। यदि पूरा २ अभ्यास न हुआ हो तो जब २ दूसरी चिन्तायें आवें तब २ उन चिन्ताओंको हटाकर कुण्डलिनीका ध्यान करे, ऐसा करते २ अभ्यास होजायगा। ध्यानका अर्थ है चिन्तवन। कुण्डलिनीका ध्यान इसप्रकार करे-

ध्यायेत्कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्।
तामिष्टदेवतारूपां सार्धत्रिवलयान्विताम्॥
कोटिसौदामिनीभासां स्वयंभूलिङ्गवेष्टिताम्।

मूलाधार पद्मकी कलीके मध्यमें त्रिकोण चक्र है उसमें नीचेको मुख कियेहुए स्वयं भूलिङ्ग है। साढ़े तीन लपटसे लिपटे सोये हुए सर्पके समान, अतिसूक्ष्म, बारह अंगुलीकी सैंकड़ों करोड़ बिजलियोंके समान प्रभावाली, साधनामें निज इष्टदेवतारूपिणी कुण्डलिनीशक्ति स्वयंभू लिङ्गको लपेटे हुए है। अन्तर्दृष्टिसे मूलाधारपद्म और कुण्डलिनीको देखनेका अभ्यास करो, फिर कुण्डलिनीके साथ अपने सब प्राण सब इन्द्रियें मन, बुद्धि और अहङ्कार आदि मिलरहे हैं, ऐसा ध्यान करो। ध्यान करते२ जब अभ्यासमें ध्यान करते ही ज्ञान होजाय कि-सब एकस्थानमें आकर कुण्डलिनीके साथ मिलगये हैं, तब समझो, कि-अभ्यास होगया

इस अभ्यासको करनेमें कुछ दिन लगावे, इसका अभ्यास होजाने पर पहले बैठकर यह करे, फिर नासिकाके बायें और दायें दोनों छिद्रोंसे एकसाथ वायुको खेंचकर जोरके साथ हुम् इस बीजका ऊपरसे जरा झोंक देकर उच्चारण करता हुआ स्वरको खेंचकर मूलाधार पद्ममें उस स्वरको लेजाकर समाप्त कर देय। इसप्रकारसे उच्चारण करे, कि—'हुम्' का स्वर कण्ठसे मूलाधारतक उतरता चलाजाय। इसका भी कई दिनतक अभ्यास करे। फिर उस स्वरके साथ जो वायु गया हो उसको लौटकर ऊपरको अर्थात् नासिकाके मार्गसे न आनेदेय और साथ २ मूलाधारका सङ्कोच करे। इस सङ्कोचके समय शाक्त लोग 'हंसः' और वैष्णव 'सोऽहम्' तथा शैव 'शिवोऽहम्' कहें। यदि ऐसा न कहाजाय तब भी कोई विशेष हानि नहीं है। जिस रीतिसे मूलाधारका सङ्कोच कियाजाता है, योगशास्त्रमें उसका नाम अश्विनी मुद्रा है। वह और कुछ नहीं है, बारंबार गुह्यद्वारको सकोडना और फैलाना पडता है, वह क्रिया बहुत जल्दी २ करे।

ऐसा करते २ एकाग्र मनसे ध्यान करे, कि—पहले जो कुंडलिनी शक्ति स्वयंभू लिङ्गको लपेट ब्रह्मद्वारमें मुख दियेहुए सोरही थी, वह जागउठी है और दीपशिखाके आकारवाले जीवात्मा तथा इन्द्रियादिके साथ एकीभूत होकर ब्रह्मद्वारके मार्गमें अर्थात् सुषुम्नाके भीतरको चढना आरम्भ कररही है।

इसप्रकार ध्यान करते २ चिन्ता, इच्छा और क्रियाशक्तिके बलसे सर्वशक्तिमयी कुण्डलिनी वास्तवमें जागउठेगी और धीरे२ उठनेलगेगी, साधकको इसका स्पष्ट अनुभव होने लगेगा। कुंडलिनी जब जितनी जाग उठेगी तब मेरुदण्डमें उतना ही सिड२शब्दहोगा और एक प्रकारके अपूर्व अव्यक्त आनन्दका अनुभव होगा। ऐसी अवस्था होजाने पर मूलाधारके सब गुण, सब शक्तियें और सब

क्रियाएं कुण्डलिनीमें विलीन होजायँगी। तदनन्तर उससे ऊपरके स्वाधिष्ठानचक्रमें लेजानेका उद्योग करना होगा। स्वाधिष्ठानका वर्णन इसके पहिले किया जाचुका है। उस समय उस स्वाधिष्ठानके वर्णन और शतकोटि बिजलियोंके प्रकाशवाली, सूक्ष्मातिसूक्ष्म कुंडलिनी मूलाधारके सर्वस्वको अपने स्वरूपमें लीनकरके सुषुम्नाके मार्गसे स्वाधिष्ठानमेंको जारही है, ऐसा ध्यान करे। अभ्यास होजाने पर क्रमकरके कुण्डलिनी स्वाधिष्ठानमें पहुँच जायगी, उस समय सब शिहर करती रहेगी और साधक आनन्दका अनुभव करेगा। यहाँ एक बातका याद दिलाये देते हैं—तुम पहले जो नासिकाके दोनों छिद्रोंमे वायुको खेंचकर हुम्.इस शब्दके साथ श्वास प्रश्वासको मूलाधारमें लेगये हो उसको त्याग नहीं सकोगे, किन्तु कुम्भक करके रोकना होगा। क्रम २ से अभ्यास करके यह शक्ति प्राप्त करनी होगी।

स्वाधिष्ठान पद्ममें कुंडलिनीके पहुँच जाने पर मणिपूर-पद्म का ध्यान तथा स्वाधिष्ठान-चक्रमेंकी सकल शक्तियोंके विलीन होनेका और कुण्डलिनीके उठनेका ध्यान करे।

मणिपूरको छोडकर इसप्रकार ही अनाहत पद्म और मणिपूर में समस्त शक्तियोंसे युक्त कुण्डलिनीके तहाँ चढनेका ध्यान करे इस अनाहत पद्ममें प्राणकी आशा चिन्ता आदि सब वृत्तियें और इस पद्ममेंके गुण आदि कुण्डलिनीके शरीरमें लीन होजायँगे, उस समय विशुद्ध-पद्मका ध्यान और कुंडलिनीके उठने का ध्यान करके विशुद्ध—पद्ममें पहुँचादेय, इस विशुद्ध-पद्ममें बिजलीकी समान चमकता हुआ प्रणव (ॐ) रहता है, यहाँ ही आकाशतत्त्व है, इसलिये निरन्तर ॐकारकी ध्वनि होती रहती है।

यहाँसे आज्ञाचक्रमेंको लेजाना होगा। आज्ञाचक्रका और कुण्डिलिनीका ध्यान करके पहलेकी समान पहुँचावे। यहाँ मन

का मार्ग और सोमचक्र है । सुषुम्नाके मुखके नीचे कपाटस्वरूप अर्धचन्द्राकार मण्डलको भेदकर कुण्डलिनी चढेगी ।

इस आज्ञाचक्र तक पहुँचजाने पर जीवात्माका बन्धन खुल जाता है । सोमचक्रमेंकी अमृतधारामें स्नान और ब्रह्मदर्शन होता है । इसके बाद ही सहस्रार है । कुण्डलिनी जीवात्माको सहस्रार में लेजाकर परमात्माके साथ मिलादेगी और पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वचा, श्रोत्र, वाणी, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि लीन होजायँगे । जीव शक्ति है, परमात्मा शक्तिमान् है, दोनोंके मिलनके अद्वितीय आनन्दसे भुवन भर जायगा, साधक कृतार्थ होगा । यही तान्त्रिकोंका शिवशक्तिका मिलन है और वैष्णवोंका राधाकृष्णके रसरासका विहार है । परन्तु यह अवस्था स्थायी नहीं है । कुण्डलिनी जिनको लेगई है उनको लियेहुए लाटकर फिर अपने स्थानपर आजायगी । इस समय कुंडलिनीको उतारनेकीरीति भी सीख लेनी होगी । लौट आना ही उसका स्वभाव है, परन्तु उचित रीतिसे यदि नहीं लौटाया जायगा तो साधना क्रियामें गडबडी पड़जाना संभव है । सहस्रार या जिस चक्रमेंसे कुण्डलिनीको उतारना होगा उससमय उसका ध्यान करना होगा । उन २ चक्रोंमेंसे कुण्डलिनीमें जो २ शक्तियें और जो २ गुण विलीन हुए हैं उनको फिर वहाँ ही रखकर उतर रही है, ऐसा ध्यान करना होगा । इसप्रकार उतारने के समय भी सिड२शब्दका अनुभव होगा, यहही उतारनेका क्रमहै । कुण्डलिनी अपने मूलाधार पद्ममें आकर पृथिवीत्व आदिकी सृष्टि करती हुई पहलेकी समान ही स्वयंभू लिङ्गको लपेट कर ब्रह्म विवरमें मुख ढका पहलेकी समान सोजायगी । उस समय साधक कुम्भकको वायुको छोड देगा । श्वास प्रश्वास चलने लगेंगे तथा

जीवात्मा भी भ्रान्ति और मायासे आच्छन्न होजायगा, साधक ऐसा भी ध्यान करे। इसप्रकार कुण्डलिनीको चढ़ाया और उतारा जाता है। ऐसा होने पर मनुष्यका ब्रह्मद्वार खुलजाता है और ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति होकर ब्रह्मनिष्ठा होती है। यह निष्ठा कभी विचलित नहीं होती है यह प्रत्यक्ष ज्ञान है। दूसरेके मुखसे सुनी हुई बात वा शास्त्रपाठका फल नहीं है। किसी मनुष्यके मुखसे जो बात सुनीजाती है, दूसरे मनुष्यकी बातसे उसका खण्डन होसकता है। एक शास्त्रमें जो बात लिखी है, दूसरे शास्त्रके विभिन्न मतसे उसका खण्डन होसकता है, परन्तु यह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं जासकता। इस नित्यानन्दका उपभोग करने पर फिर इस संसारके दुःख मिले आनन्दकी ओरको प्राण नहीं दौड़ता है। यहाँसे साधकके नवीन जीवनका आरम्भ होता है।

ब्रह्मज्योति।

कुण्डलिनीको जगाना मानसी क्रिया है, मनमें ही इसका आनन्द और मानसिक नेत्रसे ही इसका दर्शन होता है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो बाहरके इस स्थूलनेत्रसे ब्रह्मज्योतिको देखना चाहते हैं। ऐसा कोई काम नहीं है जो योगसाधनासे सिद्ध न होसके। नीचे लिखे उपायसे ब्रह्मज्योतिका दर्शन किया और कराया जासकता है, परन्तु यहाँ यह बात कहे देते हैं, कि—जब तक जीव प्रकृतिके बन्धनको खोलकर केवल नहीं होजायगा तब तक मुक्त नहीं होसकेगा।

ब्रह्मज्योति क्या पदार्थ है, पहले इसकी आलोचना करना ही ठीक होगा। ब्रह्मज्योतिको समझनेके लिये पहले ब्रह्मके स्वरूप को समझ लेनेका उद्योग करना चाहिये। ब्रह्मको बिना जाने उसकी ज्योतिको कैसे समझा जासकेगा? परन्तु यह विषय बड़ा गहन है। सकल वेद जिसका कीर्तन करते हैं, सब प्रकारकी

तपस्या जिसको पानेके लिये कीजाती है, जिसको पानेके लिये लोग ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करते हैं, मैं अधम संसारान्ध जीव उस के विषयमें संक्षेपमें क्या कह सकता हूँ ? । वह आत्मा है, शास्त्रने इस आत्माकी बड़ीभारी महिमा गाई है । शास्त्र कहता है-"ज्ञानवान् आत्मा न कभी मरता है और न कभी जन्म लेता है । वह किसीसे उत्पन्न नहीं होता, किन्तु वह अज नित्य शाश्वत और पुराण है । देहके नष्ट होजाने पर भी वह नष्ट नहीं होता । हन्ता यदि यह समझे,कि -मैं किसीको मार सकता हूँ अथवा हत (माराजानेवाला) यह समझे कि-मैं मारा गया तो ये दोनों ही असली तत्त्वको नहीं समझते, आत्मा न किसीको मारता है और न स्वयं हत होता है ।" सब ज्ञान सब पवित्रता आत्मामें पहलेसे ही विद्यमान है । भेद इतना ही है,कि-कहीं अधिक प्रकाशक है और कहीं कम प्रकाशक है । मनुष्यके साथ मनुष्यका अथवा इस ब्रह्माण्डमेंकी हरएक वस्तुमें भेद देखते हैं, वह प्रकारगत नहीं है।परिमाणगत है.हरएकके पीछे वह सत्य एकमात्र अनन्त, नित्यानन्दमय नित्यशुद्ध, नित्यपूर्ण ब्रह्म स्थित है । वह ही आत्मा है । वह पुण्यात्मामें, पापीमें, सुखीमें, दुःखीमें, सुरूपमें, कुरूपमें, मनुष्यमें, पशुमें सर्वत्र एकरूप है । वह ज्योतिर्मय है । उसके प्रकाशकी न्यूनाधिकतासे ही नानाप्रकारके भेद होरहे हैं किसीके भीतर वह अधिक प्रकाशित है और किसीके भीतर थोडा परन्तु उस आत्माके समीप इस भेदका कुछ अर्थ नहीं है किसीकी पोशाकके भीतर उसके शरीरका अधिक भाग दीखता है और दूसरेके देहका थोडासा भाग दीखता है ऐसा होनेसे शरीरमें कुछ भेद नहीं पडता । केवल पोशाकसे ही जिसके शरीरका थोडासा भाग वा अधिक भाग दीखता है; इसकारणसे ही उसके शरीरका भेद दीखता है आवरण अर्थात् देह और मनकी न्यूनाधिकताके

अनुसार ही आत्माकी शक्ति और पवित्रता प्रकाशित होती है। इससे सिद्ध हुआ, कि—शास्त्रके सिद्धान्तमें भली और बुरी नामकी दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। वह एक वस्तु ही भली और बुरा हो बन रही है और उसमें जो भेद है वह केवल परिमाणके कारणसे है और कार्यदशामें भी हम ऐसा ही देखते हैं आज जिस वस्तुको हम सुखदायक कहते हैं कलको पहलेकी अपेक्षा हमारी कुछ अच्छी दशा होजाने पर उसको ही हम दुःखदायक समझकर घृणा करते हैं। इसलिये वास्तवमें वस्तु के परिमाणभेदक कारणसे ही भेद मालूम होता है, वस्तुमें कुछ भेद नहीं है वास्तवमें भली बुरी कुछ वस्तु है ही नहीं। जो अग्निकी तेजी हमारे शीतको दूर करती है वही एक बालकको झुलसा सकती है। यह क्या अग्निकी तेजीका दोष है? सबको ही कहना पड़ेगा, कि—नहीं। आत्मा परिपूर्ण और नित्य शुद्ध है, परन्तु जो प्राणी असत् (खोटा) काम करता है वह अपने स्वरूप के विपरीत काम करता है वह अपने स्वरूपको जानता ही नहीं हत्यारे मनुष्यके भीतर भी शुद्ध स्वभाव आत्मा विराजमान है, उसने भ्रमसे उसको ढक रक्खा है, वह अपने आत्माकी ज्योतिको प्रकाशित नहीं होने देता और जो मनुष्य यह समझता है, कि—वह मारागया उसका यह समझना भी धोखा ही है, क्योंकि—आत्मा नित्य है, उसका नाश तो कभी हो ही नहीं सकता। अणु (छोटे) से भी अणु और बड़ेसे भी बड़ा है, वह सबका प्रभु है और हरएक मनुष्यके हृदयके परमगुप्त स्थानमें रहता है निष्पाप पुरुष उसका दर्शन पाकर सकल दुःखोंसे छूटजाता है। जो देहशून्य होकर भी देहमें रहता है, जो देशविहीन होकर भी देशमें रहने वालेकी समान है, उस अनन्त सर्वव्यापी आत्माका इसप्रकार ध्यान करके ज्ञानी पुरुष फिर दुःखका अनुभव नहीं करते हैं। आत्माकी स्थितिके विषयमें शास्त्र कहता है, कि—

काष्ठमध्ये यथा वह्निः पुष्पे गन्धः पयोघृतम् ।

देहमध्ये तथा देवः पापपुण्यविवर्जितः ॥

जैसे काठमें अग्नि रहता है फूलमें गन्ध रहता है और दूधमें घी रहता है तैसे ही पापपुण्यशून्य आत्मदेव वा परमात्मा देहमें स्थित है ।

आत्मदर्शनमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं स्वात्मदर्शनम् ॥

आत्मसाक्षात्कार होते ही मनुष्य कृतार्थ होजाता है.जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त होजाती है, इसलिये सब प्रकारका उद्योग करके सब मनुष्योंको आत्मदर्शन करना चाहिये ।

भला आत्मदर्शन करना कौन नहीं चाहता है ? सर्वसन्तापहारी ब्रह्मदर्शनके लिये कौन उद्योग नहीं करता है? परन्तु वास्तविक उद्योग करते हैं, यह नहीं कहा जासकता। मुखसे कहना और बात है, और काम करना दूसरी बात है । बहुत बोलनेसे,तीक्ष्ण बुद्धिसे वा केवल शास्त्र पढ़लेनेसे आत्माका दर्शन नहीं होता ।

तो फिर आत्मदर्शन कैसे होता है ? चारों ओरसे यही प्रश्न होता है, कि—आत्माका दर्शन कैसे मिलता है ? ऋषि महर्षि मेघगम्भीरस्वरमें उत्तर देते हैं, कि—योगसाधनासे । तब तो घूम फिरकर फिर योगकी ही बात आगई ।.जो असत् कर्म करने वाले हैं, जिनका मन.शान्त नहीं है वे कभी भी आत्माको नहीं जानसकते, उनको ज्योतिकी लहर नहीं दीख सकती । केवल, जिनका हृदय पवित्र है, जिनके कर्म पवित्र हैं, जिनकी इन्द्रियें वशमें हैं, चित्त शुद्ध है, चित्तवृत्ति निरुद्ध है उनको ही आत्मदर्शन मिलता है । शास्त्रमें आत्माके विषयमें एक बडी सुन्दर उपमा दी है । आत्माको रथी, शरीरको रथ, बुद्धिको सारथी, मनको लगाम और इन्द्रियोंको घोडेके रूपमें वर्णन किया है । जिस रथमें घोड़े

ठीकर वशमें होते हैं, जिस रथके घोड़ेकी लगाम मजबूत होती है और सारथी हाथमें अच्छे प्रकारसे पकड़ेहुए होता है वह रथ हा विष्णुके परमपदमें पहुँच सकता है। परन्तु जिस रथमें इन्द्रियरूप घोड़े दृढताके साथ वशमें नहीं होते हैं, मनरूप लगाम भी ठीकर काबूमें नहीं होती है वह देहरथ अन्तमें विनष्ट होजाता है। सकल भूतोंमें स्थित आत्मा चक्षु वा अन्य किसी इन्द्रियके समीप प्रकाशित नहीं होसकता, किन्तु जिनका मन पवित्र होगया है, वे ही उसका दर्शन पाते हैं। जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धके पार है, जो अव्यय है, जिसका आदि और अन्त नहीं है, जो प्रकृति के पार है, जिसका परिणाम नहीं होता है उसको जो पाजाते हैं वे ही सब प्रकारके दुःख और मृत्युके मुखसे छूटते हैं, परन्तु उस को प्राप्त करना ही कठिन है, यह मार्ग तेज तलवारकी धारकी समान दुर्गम है। मार्ग बडा ही लम्बा और विपत्तियोंसे भरा हुआ है, परन्तु निराश होनेका कोई कारण नहीं है, दृढताके साथ चलना होगा। उठना होगा, जागना होगा और जबतक अपने अन्तिम लक्ष्य पर न पहुँचजाओ तबतक रुकनेसे काम नहीं चलेगा। अन्तिम लक्ष्य क्या है? आत्मशक्ति वा अव्यक्त ब्रह्मभावका व्यक्त होना। योगसे चित्तकी वृत्ति निरुद्ध होती है इसलिये सब इन्द्रियें वशमें होजाती हैं और मन स्थिर होजाता है, उस समय ध्यान धारणा और समाधिके द्वारा आत्माका दर्शन होता है और उससे पहले योगसाधनाके द्वारा उसकी जो ज्योति जहाँ तहाँ आकाशमें दमक रही है, जिसकी लहरलीलामें तरंगरूपमें जगत् प्रकट होरहा है, उसका दर्शन किया जासकता है।

चिदात्मा सर्वदेहेषु ज्योतीरूपेण व्यापकः।
तज्ज्योतिश्चक्षुरग्रेषु गुरुनेत्रेण दृश्यते ॥

वह चित्स्वरूप आत्मा ज्योतिरूपसे सबके ही शरीरमें व्याप रहा है, गुरुनेत्रके द्वारा वह ज्योति नेत्रके अग्रभागमें दीखती है।

न ब्रह्मा न शिवो विष्णुः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
सर्वे क्रीडन्ति तत्रैते तत्सर्वेन्द्रियसम्भवम् ॥

वह ज्योति ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव है, वह ज्योति ही अक्षर-रूप परमपुरुष है । सब जगत् उस ज्योतिके भीतर ही क्रीडा कर रहा है और जो कुछ इन्द्रियोंके द्वारा अनुभवोंमें आता है वह सब भी ब्रह्मज्योतिसे ही उत्पन्न हुआ है ।

अब उस ही ब्रह्मज्योतिके दर्शनका जो उपाय योगशास्त्रमें कहा है वह उपाय अच्छे प्रकारसे समझमें नहीं आता है इस लिये उसकी और एक बार आलोचना करते हैं क्योंकि-योगी कहते हैं, कि-वह चित्तस्वरूप आत्मा ज्योतिरूपसे सबके देहोंमें व्याप रहा है, गुरुनेत्रसे उसको चक्षुके अग्रभागमें देखा जासकता है।

गुरुनेत्र

एक बडा ही शुभ दिन था, जब महायोगीश्वरके मुखसे निकली हुई गुरुनेत्रकी बात मेघगम्भीर स्वरमें सुनी थी। उस समय जगत्के पवनमें, अग्निमें, आकाशमें, पक्षियोंकी कुहुकमें और पुष्पोंकी सुगन्धमें वह बात गूँजरही थी । बिना प्रत्यक्ष किये अर्जुनको विश्वास ही नहीं हुआ था, कि-भगवान् श्रीकृष्ण ही विश्वात्मा हैं। प्रत्यक्ष किये बिना मनुष्यको किसी बात पर भी विश्वास नहीं होता-और करना भी नहीं चाहिये । इसलिये ही भगवान्के सखा और शिष्य अर्जुनने हाथ जोडकर विनीतभावसे प्रश्न किया कि-

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ (भ.गीता)

हे परमेश्वर ! आपने जो अपने रूपकी बात कही सो ठीक है, हे पुरुषोत्तम ! आपके उस ईश्वरीयरूपका मैं दर्शन करना चाहता हूँ । हे प्रभो ! यदि आप मुझे उस रूपके दर्शन करनेका अधिकारी समझते हों तो हे योगेश्वर ! मुझे अपना अविनाशी रूप दिखाइये ।

यह सुनकर भगवान्‌ने अर्जुनको परमात्मज्योति—जगत्‌से जुदा हुआ विराटरूप दिखानेके लिये स्नेहभरे कण्ठसे कहा, कि—

> पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
> नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥
> पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
> बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥
> इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
> मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥

हे अर्जुन ! तू मेरे भाँति २ के वर्ण और नानाप्रकारके आकारों वाले सैंकड़ों और सहस्रों रूपोंको प्रत्यक्ष देख । हे भारत ! आज मेरे कलेवरमें आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत्, अश्विनीकुमार तथा पहले कभी न देखी हुई आश्चर्यमयी और भी बहुतसी वस्तुओंको देख । मेरे देहमें सचराचर विश्वको तथा और जो कुछ भी देखना चाहता हो उसको देख, परन्तु मेरे देख, इतना कहनेसे ही तू नहीं देखसकेगा, मनुष्यके जो दो नेत्र होते हैं उनसे यह दृश्य नहीं देखाजासकता

> न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
> दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

तू अपने इस चक्षुसे मेरे रूपको नहीं देख सकेगा, इस लिये मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूँ, उससे तू मेरी असाधारण योगेश्वर-मूर्त्तिका दर्शन कर ।

अर्जुनने दिव्य चक्षु पाकर विश्वरूपका दर्शन किया था योगी कहते हैं, कि-हर एक मनुष्यमें जो दो भौतिक नेत्र दीखते हैं, उनके सिवाय और एक नेत्र है। जब तक वह तीसरा नेत्र नहीं खुलता है तबतक उसका होना न होना एकसा है। योगी योगसाधनाके द्वारा उस तीसरे नेत्रको खोजा करते हैं इन दीखने वाले दो चक्षुओंके द्वारा बाहरके सब पदार्थ देखे जा सकते हैं, परन्तु भीतरकी वस्तु सूक्ष्म वस्तु वा बहुत दूरकी वस्तु नहीं दीख सकती। और इस ज्ञानमय तीसरे चक्षुसे सूक्ष्म, व्यवहित (परदेमेंकी), बहुत दूरकी और भीतरकी सब वस्तुएँ देखी जासकती हैं-जाननेमें आसकती हैं। उस तीसरे चक्षुका नाम दिव्यचक्षु, आर्ष विज्ञान, ज्ञानचक्षु वा गुरुनेत्र आदि हैं। वह चित्तमय वा ज्ञानमय तीसरा चक्षु दोनों भौंके ठीक बीचके स्थान ललाटमें है। हम महायोगी शिव और शिवानीके तीन नेत्र पाते हैं, उनका ज्ञानमय तीसरा नेत्र या ऊर्ध्व चक्षु जिस स्थानमें अङ्कित देखते हैं, ठीक उसी स्थान पर सब ही मनुष्योंके वह तीसरा चक्षु है, योगी बनने पर ही वह चक्षु खुलता है। शिवके बाहरी दोनों नेत्र सदा अर्धनिमीलित पाते हैं, बहुतसे लोग कहते हैं, कि-कि विषपान करनेके कारण शिवके दोनों नेत्र अधमुँधे रहते हैं, परन्तु यह बात नहीं है। महायोगीका तीसरा ज्ञानचक्षु खुलाहुआ रहनेके कारण उसको नीचेके नेत्रोंसे कुछ अधिक देखना ही नहीं पड़ता है, वह दिव्य नेत्रसे ही निकटका, दूरका और भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख लेता है इसलिये बाहरके दोनों नेत्र प्रायः अधमुँदे रहते हैं। बाहरी चक्षुओंसे देखनेका उसको प्रयोजन ही नहीं रहता है। यदि हमारा ज्ञान-नेत्र खुल जायगा तो इन बाहरके नेत्रोंसे कुछ देखनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। ज्ञाननेत्रके खुलजाने पर सब वस्तुएँ-सब विषय और जगत् तथा जगत्पतिको देखसकोगे, उसकी तुलनामें बाहरी नेत्रोंकी शक्ति कुछ है ही नहीं।

ब्रह्मज्योति–दर्शन

दिव्य चक्षु या गुरुनेत्रके खुलजाने पर ब्रह्मज्योति वा आत्माका दर्शन होता है। उस नेत्रको खोलनेका उपाय क्या है? अनेकों उपाय हैं। यहाँ दो संप्रदायोंके दो उपायोंकी चर्चा करेंगे, जिसको जिसमें सुभीता मालूम हो, उसको उस ही उपाय या मार्गका आश्रय लेकर साधना करनी चाहिये।

प्रथम–उपाय वा साधनप्रणाली–

चर्मचक्षुसे जोकुछ देखनेमें नहीं आता है, ऐसी किसी सूक्ष्म वस्तु या ब्रह्मज्योति अथवा दूरका पदार्थ, इनमेंसे किसी वस्तुको देखनेकी इच्छा करो और उस इच्छाको खूब प्रबल करो। पहले उस इच्छाशक्तिके द्वारा इन्द्रियोंके द्वारको रोकतेहुए सकल पदार्थोंको देखनेकी जो वृत्तियें हैं उनको चित्तभूमिमें इकट्ठा करो और ललाटके भीतर चित्तको अर्पण करदो, ऐसा करनेसे उस समय चित्त एकतान होजायगा और बाहरके दोनों चक्षुओंकी सब शक्ति उस चित्तमें जाकर घुसजायगी। उस समय प्रबल इच्छाशक्तिके द्वारा भौतिक चक्षु तथा अन्य भौतिक इन्द्रियोंकी शक्तिको खैंचकर और उन सबोंको पुञ्जरूप, केन्द्ररूप या एकमुख करके चित्तके ऊपर प्रयोग करो। यह काम करते ही तुम्हारा चित्तस्थान (ललाटके भीतर) मानो धक् २ करके जल उठेगा अर्थात् तहाँ एकप्रकारका आश्चर्यमय प्रकाश प्रकट होजायगा इस प्रकाशमें, हम पहले जिन वस्तुओंको देखना चाहते थे वह उस समय दीखने लगेंगी, उस समय यदि भारतमें बैठकर विलायतकी किसी वस्तुको देखनेकी आवश्यकता हो, प्रेतलोकके वा स्वर्गलोकके किसी दृश्यको देखनेकी इच्छा हो अथवा किसी सन्दूकमें छिपाये हुए पदार्थको देखनेकी वासना हो तो अपनी इच्छानुसार देखसकते हो। इच्छित पदार्थको देखनेके लिये उस

समय हमें किसी बाहरके प्रकाशका सहारा नहीं लेना पड़ेगा। उस ज्योतिर्मय, ज्ञानमय, प्रकाशमय तीसरे नेत्रके द्वारा वा ज्ञाननेत्रके द्वारा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान और सैकड़ों परदोंमें छिपेहुए भी चाहे जिसपदार्थको देखसकोगे।

यहाँ एक बात और कहनी है। वह यह है, कि–ज्ञानचक्षु वा गुरुनेत्रके द्वारा सूक्ष्म वस्तु देखीजासकती है, परदेमेंका पदार्थ देखा जासकता है, दूरका पदार्थ देखाजासकता है, परन्तु नामरूपसे रहित ज्ञानविज्ञानकी सीमाके पार, अनलमें, अनिलमें, गगनमें, स्वर्गमें, कुसुमकलीमें, मनुष्यमें, पशुमें, विहङ्गमें, पतङ्गमें, पर्वतमें, रेतेके कणोंमें, वृक्षलताओंमें जलाशयोंमें–सर्वत्र, किसी गुप्त स्थानमें विराजमान परमात्मा वा परब्रह्मको कैसे देखाजासकता है?

उसको देखना तो दूरकी बात है, यह जो ग्रह, नक्षत्र, भूमि, सागर, महासागर, नदी, पर्वतमाला, नगर, ग्राम, मनुष्य जाति, अन्य प्राणी, वृक्ष लता आदि तथा पक्षी इन अनन्तों पदार्थोंको हम क्या समझें? किसको किस नामसे पुकारें? सब ही देखते२ बदलजाते हैं। एक छोटेसे पौधेको लेलो, उसकी ओर को खूब ध्यान देकर देखो और समझकर देखो, क्या चिरकाल तक समान भावसे उसको हम उद्भिद् ही कहसकेंगे या पहचान सकेंगे? उद्भिद् (वृक्ष लता आदिका पौधा) धीरे २ मट्टीको फोड़कर ऊपरको उठने लगता है। फिर बढते२ एक बड़ा वृक्ष बनजाता है, परन्तु वह कई दिन, दो महीने, या दोसौ चारसौ वर्ष इसके बाद मर जाता है–केवल बीज ही रहजाता है। वह घूम २ कर अपने कर्त्तव्यको पूरा करता है, उस बीजसे फिर वृक्ष होजाता है और अन्तमें फिर उसका परिणाम बीज ही होता है। एक पक्षीको लेलो। वह एक अण्डेमेंसे उत्पन्न होता है सुन्दर पक्षीका रूप धारण करलेता है, कुछ दिन जीवित रहता है,

फिर मरजाता है, केवल थोड़े से अण्डे या बच्चे छोड़जाता है, उनसे ही आगेको और पक्षी हो जाते हैं। पशुओंके विषयमें भी यही बात है। हर एक पदार्थ मानो कुछएक बीज-कुछएक मूल उपादान कुछएक सूक्ष्म आकारोंसे आरम्भ होता है और स्थूलसे स्थूलतर होता चलाजाता है। कुछ समय ऐसा ही क्रम चलता रहता है और फिर सूक्ष्मरूपमें पहुँचकर विलीन हो जाता है। वर्षाकी जलधारें, जिनके भीतर इस समय सूर्यकी किरणें क्रीड़ा कर रही हैं, वे वर्षाकी जलधारायें कहाँ जाकर पहुँचती हैं ? हवाके द्वारा दूरसे दूर पहाडोंमें जा पड़ती हैं, तहाँ पहुँचकर बरफ बनजाती हैं और फिर जल बनजाती हैं तथा सैकड़ों कोस तक घूमती हुई अपने उत्पत्तिस्थान समुद्रमें पहुँचजाती हैं। हमारे चारों ओर प्रकृतिकी सकल वस्तुओंका ऐसा ही संबन्ध है। इसप्रकार सिद्ध हुआ, कि- सब ही पदार्थोंका एक मूल है वह चाहे जिस रूपको धारण करे, वह रूप सदा एकसा नहीं रहसकता, इन सब वस्तुओंको मिथ्या भी कहसकते हैं और सत्य भी कहसकते हैं। चाहे सो कहो, एक महान् सत्य इन सबके भीतर विद्यमान है। वही सत् है, वही चित् है, वही आनन्द है। यही सबका मूल है ब्रह्म है, ज्ञानचक्षुके वा गुरुनेत्रके खुलजाने पर यदि इनके स्वरूप वा सूक्ष्म अवस्थाको देख पाओगे तो तुम्हे ब्रह्मदर्शन क्यों नहीं होगा ? अवश्य होगा।

जिस प्रकार गुरुनेत्र खुलसके, उसकी साधनाकी बात पीछे कहचुके हैं,कप २०से उसी प्रकार काम करनेपर सिद्धि होगी,परंतु इस काम वा इस योगके सिद्ध होनेसे पहले नानाप्रकारके अलौकिक दृश्य देखनेमें आवेंगे,अलौकिक शब्द सुननेमें आवेंगे। देहके भीतर कभी वाँसुरी,कभी वीणा और कभी घण्टेकी ध्वनि सुनाई आवेगी, कभी अलौकिक घटनायें दीखेंगी-आकाशमें कितने ही देवी देव

ताओंकी मूर्तियें दीखेंगी, कभी देवताओंके अनुचरोंकी छाया नेत्रों के सामने आवेगी, कभी इष्टदेवकी तसवीर दीखेगी, कभी दिव्य सुगन्धिसे दिशाएँ महक उठेंगी, कभी दिव्य वाणी सुनाई देगी, कभी दिव्य नगाड़ोंका शब्द होगा। साधकको इस समय भुलावेमें नहीं पड़ना चाहिये—किसी अलौकिक भाव पर मोहित नहीं होना चाहिये। जब तक अपना इष्ट सिद्ध न हो, तबतक अपने साधनापथसे विचलित नहीं होना चाहिये। इस साधनाका आरम्भ करने पर कई दिन तक दोनों भौंके मध्यमें लाल २ प्रकाशकी रेखा क्रीडा करतीहुई दीखेगी।

और एक प्रकारका साधन—

जिस साधकको जो आसन सिद्ध होगया हो, वह उस ही आसनसे उत्तरको या पूर्वको मुख करके बैठे। फिर मनको स्थिर करनेके लिये नाभिमण्डलकी ओर दृष्टि लगाये हुए कुछ देर स्थिर बैठा रहे। जब चित्त स्थिर होजाय तब मुख ऊँचा कर ठीक सीधा होकर बैठे और नाभिस्थानकी ओर दृष्टि रखकर नाभि में वायुको रोके। वायुको धारण करनेके लिये कुम्भक किया जाता है और मनको वहाँ ही रखना होता है। कुछ एक दिनोंके अभ्याससे ही वायु आप ही उस स्थान पर पहुँचकर स्थिर होजाता है, यह काम एक दिनमें सिद्ध नहीं होगा। प्रतिदिन पिछली रात्रि और सन्ध्याके समय ऐसी क्रिया करता रहे। कुछ दिन ऐसा करते २ वह क्रिया ठीक होजयगी। फिर इसी नियमसे अर्थात् पिछली रात और सन्ध्याके समय क्रम २ से नीचेके कम लसे ऊपर करता चलाजाय और क्रमसे एक अवस्थाकी सिद्धि पाकर दूसरी अवस्थामें पहुँचे।

पूर्वोक्त अनुष्ठानको करने पर वायु अपने स्थानसे धीरे २ अग्निस्थानमें जायगा। उस समय अपान वायुके द्वारा अग्नि-

चलायमान होगा और क्रम २ से दीप्त होउठेगा। अग्निके दीप्त होने पर अर्थात् इस अवस्थाकी सिद्धि प्राप्त होजाने पर इससे आगेका काम करना होगा। अग्निके दीप्त होजाने पर साधककी जठराग्नि दीप्त होगी, देहके भीतर वेणु वीणा और घण्टे आदि का नानाप्रकारका शब्द सुनाई आवेगा, मलमूत्रमें कमी होजायगी ऐसा होने पर साधक समझे कि—इस साधनामें उत्तीर्ण होगया इसके वाद नीचे लिखा काम करे–

इस समय भी नाभिस्थानमें वायुको धारण करके इच्छा शक्ति के द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको जगाना होगा अर्थात् नाभिचक्रमें मनको रखकर प्रबल इच्छा करे, कि—कुण्डलिनी शक्ति जाग उठे तथा कुण्डलिनीके ध्यान और रूपका चिन्तवन करे (कुण्डलिनी का वर्णन पहले किया जाचुका है) इस समय ऊपर वर्णित प्रदीप्त अग्निके द्वारा सन्तप्त और वायुके द्वारा लम्बी होकर सोई हुई सर्पाकारा कुण्डली फनोंको फैलाती हुई जाग उठेगी और मन उसमें लीन होजायगा। परन्तु यह याद रखना होगा, कि—जितने दिनों तक मन उसमें अच्छे प्रकारसे लीन नहीं हो तब तक इस साधनासे हटना ठीक नहीं होगा।

इस अवस्थाकी सिद्धि होजाने पर कुण्डलिनी जाग जायगी और वायु भी अग्निके साथ मिलकर नाभिचक्रमें होता हुआ सब देहमें फैल जायगा। इस अवस्थामें पहुँच जाने पर साधक बलवान् और तेजस्वी होजायगा और समय २ पर अतिउज्ज्वल प्रकाशकी रेखा दोनों भौंके मध्यमें दिखाई देगी।

इस अवस्थाके पार होजाने पर साधक अनाहतपद्ममें वायु, मन और इच्छाशक्तिको धारण करनेका अभ्यास करेगा। इसके लिये हृदयमें जो अनाहत पद्म है मन ही मनमें दृढ़भावसे चिंतवन करे, कि—देहमेंका समस्त वायु आकर इस अनाहत–पद्ममें पहुँच

गया, तथा ऐसा चिन्तन करके कुम्भक करे। इस साधनाको भी ऊपर लिखे अनुसार पिछली रातमें और प्रातःकालके समय करे। ऐसा करते २ प्राणवायु अनाहत-पद्ममें रुकजायगा। उस समय अनाहत-पद्मका मुख ऊपरको होजायगा तथा खिल उठेगा। इसके साथ ही साथ दूसरे पद्म भी ऊर्ध्वमुख होकर क्रमसे खिलते चलेजायँगे। इस समय अनाहत-पद्ममें आकाशमें उड़नेवाली बगलों की पंक्तिकी समान प्राणवायुकी शोभा होगी और सुषुम्ना नाड़ीमें अग्नि आकर उपस्थित होजायगा, उसके द्वारा दोनों भौंके बीचों बीचमें श्यामवर्ण गहरी घनघटामें बिजलीके चमकनेकी समान प्रकाशकी रेखा बराबर क्रीड़ा करेगी। साधक उस प्रकाशको भीतर और बाहर देखेगा। इस अवस्थाके पार होजाने पर साधक नीचे लिखी क्रियाका आरम्भ करे।

इसके बाद साधक प्राणवायुको इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति की सहायतासे और भी ऊपरको उठाये अर्थात् चिन्तवन और प्रबल इच्छाके द्वारा प्राणवायुको आज्ञाचक्रमें लेजाय और कुम्भक करके अन्तरात्माका ध्यान करता रहे। बाहरी नेत्रोंकी दृष्टिको दोनों भौंके मध्यमें स्थापन करे और प्राणवायुके कार्यको स्थिर करे। इस अवस्थामें सिद्धि प्राप्त होजाने पर आत्मज्योति वा ब्रह्मज्योति विकसित होजायगी और साधक उसका दर्शन करसकेगा। यही ब्रह्मज्योतिका दर्शन है।

साधक इस अवस्थामें पहुँच जाने पर और भी कुछ दिनोंतक पहले कथनानुसार इस साधनाको करता रहेगा तो क्रम २ से ललाटमेंका बिंदु विकसित होजावेगा और सहस्रारमें टपकनेवाले अमृतधारमें प्राण पुलकित और मन लीन होजायगा तथा क्रम २ से कैवल्यसमाधि होने लगेगी। उस समय जीवात्मा और परमात्मा एक होजायँगे, गृहस्थ साधक यहाँ तक करसकने पर ही कृतार्थ और जीवन्मुक्त होजायगा।

और एक प्रकारकी साधना—

रात्रिके समय साधक साधन करनेकी एकान्त कोठरीमें आसन लगाकर उत्तराभिमुख वा पूर्वाभिमुख बैठे, बैठनेसे पहले एक दो फिट ऊँचे पतीलसोतके ऊपर एक साफ़ और चमकदार घृतका दीपक बालकर रक्खे। साधक जहाँ बैठे उससे तीन हाथकी दूरी पर घरकी दीवार होनी चाहिये और दीवार तथा साधकके मध्यके स्थानमें यह घृतका दीपक बले। जहाँतक होसके साधक मनको स्थिर रक्खे और बाहरके विषयोंमेंसे मनको लौटाकर परब्रह्ममें लगावे और बाहरी नेत्रकी स्थिर दृष्टिको उज्ज्वल दीपशिखाके ऊपर जमावे। दीपशिखाकी ओरको देखते २ जब दृष्टि स्थिर और दृढ़ होजायगी उस समय साधकको पहले मटरकी समान एक ज्योतिर्मय नीलबिन्दु दीखेगा, योगियोंकी भाषामें इसको उत्तम पुरुष कहते हैं। इस बिन्दुके दीखने पर नेत्रका पलक न लगावे और गाढ़रूपसे चिन्ता तथा प्रबल इच्छा करे, यह ज्योतिर्बिन्दु हृदयमेंके अनाहत-पद्ममेंको जारहा है, ऐसा ध्यान और इच्छा करते२ वह अनाहत-पद्ममें पहुँच जायगा। फिर ऐसी ही प्रगाढ़ चिन्ता और इच्छाके द्वारा इस बिन्दुको नासिकाके अग्रभाग पर और नासिकाके अग्रभागसे क्रमशः दोना भौंके मध्यभागमें लाकर ऊपरको चढ़ करताहुआ इसका दर्शन करे। यह साधना भी एक दो दिनमें नहीं होसकती, अन्य क्रियाओंकी समान इसका भी कितने ही दिनोंतक बराबर अभ्यास करना होगा। ऊर्ध्वदृष्टिके समय पहले अंधकारमें ज्योतिकी रेखा दीखेगी और पीछेसे प्रकाशमें ही ज्योतिकी लहर दीखने लगेगी। उस ज्योतिका दर्शन होनेपर चित्त शांत और आनन्दमय होजायगा। परन्तु इस नियमसे जो ज्योतिका दर्शन होगा, उसमें जीवात्मा और परमात्माके एकाकार होनेकी वा प्रकृतिबन्धन खुलनेकी

संभावना नहीं है, परमात्मज्योतिके दर्शनसे केवल दृढ़ विश्वास होने लगता है।

साधनाके इस स्थानसे ही यथार्थ वैराग्य होने लगता है, नहीं तो केवल मुखकी बातके विश्वास पर अथवा अन्धविश्वास पर भगवान्‌को आत्मसमर्पण करना वास्तविक समर्पण नहीं है। वह समर्पण एक प्रकारका दिखावा है। यदि भगवान्‌के ऊपर हमारा सच्चा भरोसा होता तो हम इन जड़ पदार्थोंको लेकर फँसे न पड़े रहते। रुपए पैसेके लिए, यशके लिए, रोगसे मुक्त होनेके लिए हम तुम्हारी और तुम दूसरोंकी शरण न लेते। हम सब ही अन्धकारमें हैं। जो स्पष्ट नास्तिकवादको स्वीकार करते हैं वे ही अच्छे हैं, हम तुम तो दोनों समय भगवान्‌का नाम लेते हुए भी नास्तिक हैं। जरा मन ही मनमें अच्छे प्रकार विचारकर देखो-धर्म तो मानो हमारी दृष्टिमें कुछ है ही नहीं, केवल विचार से पाईहुई कुछ बातोंका अनुमोदनमात्र है-केवल मुखकी बात ही बात है। अमुक खूब दान करता है, ब्राह्मणभोजन कराता है, कुटुम्बका पोषण करता है, अमुकने खूब धर्मशास्त्र पढ़ा है, केवल इतना ही धर्मका विषय नहीं है, यह तो धनियोंका, पंडितों का विनोद है, हमारे लिए धर्मार्थ नहीं है। जिस समय हमें आत्माका प्रत्यक्ष अनुभव होनेलगेगा, जब हम अपने हृदयमें वा जगत्‌में सर्वत्र जगन्नाथकी ज्योतिका दर्शन पाजायँगे, उस समय से ही हमारे सच्चे जीवनका आरम्भ होगा और उस समय ही नैतिक जीवनका भी आरम्भ होगा। तुम समझते होगे, कि-मैं इस बातको बढ़ाकर कह रहा हूँ, परन्तु ऐसा नहीं है। हम इस समय वनके पशुओंसे भी अधिक नीतिपरायण नहीं हैं। जो कुछ भी करते हैं वह जाति या कुटुम्बियोंके भयसे करते हैं जाति के लोग यदि आज कहें कि-चोरी करो, कुछ डर नहीं, हम साथी

हैं जो बहुतसे लोग तिलक-मालाधारी होकर भी इस काममें सम्मिलित हो जायँगे। सच्चे वैराग्यका आरम्भ हो जाने पर सब प्रयोजन नष्ट हो जाते हैं, इसलिये उस समय इन्द्रियोंके भोगसे चित्त उकताने लगता है और बाहरकी वस्तुओंका लोभ ही नहीं रहता। इसलिये ब्रह्मज्योतिका साक्षात्कार वा आत्मदर्शन बिना हुए दृढ़ विश्वास या सच्चा वैराग्य नहीं होता है। गृहस्थके लिये इतना हो जाने पर ही काम बन जाता है। वैराग्यके उदय होजाने पर त्यागी ब्रह्मविद् हो जायगा, मुक्ति उसके करतलगत होजायगी।

अष्टांग-योग

अब योगशिक्षाके और एक मार्गकी बात कहेंगे। गृहस्थ साधक ऊपर से इस मार्गका आलम्बन करके भी आगेको बढ़ सकता है। इस मार्गको अष्टाङ्ग योग कहते हैं। परन्तु सर्वत्र ही स्मरण रखना होगा कि-अव्यक्त आत्माका ब्रह्मभाव व्यक्त करना ही योगका उद्देश वा अन्तिम लक्ष्य है। मत, अनुष्ठान, पद्धति सब उस ही लक्ष्य पर पहुँचनेके उपाय वा सोपान (सीढ़ी) मात्र हैं। सर्वत्र ही उस उपनिषद्की कथाको याद रखना होगा। एक दिन यम और नचिकेतामें बातचीत हुई थी। नचिकेताने प्रश्न किया था, कि-मृत्युके बाद मनुष्यकी क्या दशा होती है? यमने उत्तर दिया, कि-ज्ञानवान् आत्मा न कभी मरता है, न कभी जन्म लेता है और किसीसे उत्पन्न भी नहीं होता है, वह अज, नित्य शाश्वत और पुराण है। देहके नष्ट होने पर भी वह नष्ट नहीं होता। घातक यदि समझे, कि मैं चाहे जिसे मार सकता हूँ अथवा हत व्यक्ति यदि यह विचारे, कि मैं मारागया तो इन दोनोंको ही नासमझ कहना होगा। आत्मा न किसीका वध करता है और न कोई इसका वध कर करसकता है। यदि यमका यह कहना ही ठीक है तो वह नित्य २ करता क्या है

और हम भी क्या करते हैं तथा हम जीवित रहकर इस दृश्यमान जगत्‌में काम करते हुए क्यों घूमते हैं और यमराज भी नित्य२ ही इस दृश्यमान जगत्‌मेंसे हमारे बन्धुबान्धवोंको खेंच२ कर क्यों ले जाते हैं ? वास्तवमें यह सब मायाका खेल है। हम अपने आपको पहचानते नहीं, समझते नहीं, जानते नहीं, इस लिये ही मिलनेके सुखमें आनन्द मानकर हँसते हैं और मरणके दुःखमें बड़ाभारी विलाप करते हैं।

इसके उत्तरमें तुम कहोगे कि–ऐसी बातें तो सब ही कहते हैं, सब देशोंके सब ही शास्त्रोंमें सुनते हैं, परन्तु जैसा समझना चाहिये वैसा समझते क्यों नहीं, जैसा समझने पर नासमझीका नाम भी न रहे वैसी समझ क्यों नहीं होती ? इसके सिवाय यमराजने आत्माके जो विशेषण दिये हैं उनसे भी सन्देह होता है, आत्माका पहला विशेषण है 'ज्ञानवान्' यदि वास्तवमें आत्मा ज्ञानवान् है, तो मैं आत्मा हूँ, मैं पूर्ण ज्ञानवान् हूँ, आत्म-स्वरूप हूँ, इस बातको हम जानते क्यों नहीं ? यह बात सत्य है कि–आत्मा अविनाशी अनादि और ज्ञानवान् है। फिर भी जो हम अपने स्वरूपको नहीं जान पाते इसका कारण माया है। सब ज्ञान, सब पवित्रता पहलेसे ही आत्मामें विद्यमान है परन्तु उसका प्रकाश कहीं अधिक है और कहीं कम है। मनुष्यके साथ मनुष्य का अथवा इस ब्रह्माण्डमेंकी जिस किसी वस्तुका भी जो भेद है वह प्रकारगत नहीं है, परिमाणगत है। हर एकके पीछे स्थित सत्य वही एकमात्र अनन्त, नित्यानन्दमय, नित्यशुद्ध और नित्य पूर्ण ब्रह्म है वही आत्मा है–वही पुण्यात्मामें, वही पापीमें, सुखी में, दुःखीमें, सुन्दरमें, कुरूपमें, मनुष्यमें, पशुमें सर्वत्र एकरूप है हाँ आवरणके भेदसे उसका प्रकाश अधिक वा कम होता है जिसने पोशाक अधिक पहर रक्खी है उसकी देह उस पोशाकके भीतरसे

कम दीखती है जिसने पोशाक कम पहरी है, उसका देह अधिक दीखता है। जिसने पोशाक बिल्कुल पहरी ही नहीं है उसका सब अङ्ग नग्नरूपसे दीखता है। मायाकी पोशाक जिसके आत्मा पर जितनी अधिक जड़ीहुई है उसके आत्माका प्रकाश उतना ही कम है। इसलिये हम इस मायाकी पोशाकके बोझके कारणसे ही अपने आपको नहीं पहचानते हैं—इसलिये ही हमारे स्वरूपका जो परिपूर्ण ज्ञान है वह इस मायाकी पोशाकके भीतर लिपटा पड़ा है,पोशाकको खोलकर हटादो, कि-स्वरूप बाहर आजायगा उस समय तुम समझ सकोगे,कि-हम परिपूर्ण ज्ञानवान् हैं अविनाशी हैं। माया कहो चाहे प्रकृति कहो,एक ही बात है। जिससे यह मायाकी पोशाक खुलजाय,बाहरी भीतरी प्रकृति वशीभूत होजाय तथा आत्माका ब्रह्मभाव प्रकट होजाय वह उपाय करना ही जीवका लक्ष्य है। जिस उपाय व साधनसे यह काम सिद्ध होता है उसका ही नाम योग है।

जिस प्रकार मनुष्य इस मार्गमें बेखटके जासकें,इसके लिए योगसिद्ध पुरुषोंने अनेकों उपाय किये हैं.उनमें अष्टाङ्गयोग एक उत्तम मार्ग है। गृहस्थ अपने २ कर्त्तव्यको चलता रखकर जिस प्रकार इस मार्गमेंको बढसकें उसके लिए अष्टाङ्ग-योगकी सरल और सूधी बातें यहाँ बतलाते हैं। यहाँ यह स्मरण रखना,होगा कि—पहले जो स्नान,भोजन और साधनागृह आदिका वर्णन किया है, अष्टाङ्गयोगके अभ्यासमें भी उन सब बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

योग एक है परन्तु उसकी साधनाकी रीतियें भिन्न २ हैं। इस अष्टाङ्गयोगकी साधनाके द्वारा भी साधक चित्तवृत्तिका निरोध और आत्मस्वरूपका दर्शन करसकता है यह मार्ग बहुत ही सरल और ज्ञानविज्ञान—सम्मत है। साधनाका अर्थ है—

अभ्यास । "यमनियमप्राणायाम-प्रत्याहार-धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि । "यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ये आठ योगके अङ्ग हैं। इस अष्टांग योगकी साधना वा अभ्यास किसप्रकार करना चाहिये, उसको हम बहुत ही सरल भाषामें समझानेकी चेष्टा करेंगे।

यमसाधना

यम किसको कहते हैं? "अहिंसासत्यतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इनका अभ्यास करने पर यमका साधन होजाता है। इसलिये अहिंसासाधन, सत्यसाधन, अस्तेयसाधन ब्रह्मचर्यसाधन और अपरिग्रहसाधन इन पाँच साधनोंका नाम ही यमसाधन है।

अहिंसा—

अहिंसाके विषयमें महर्षि पतञ्जलि कहते हैं, कि "मनोवाक्कायैः सर्वभूतानामपीडनमहिंसा" मन, वाणी और देहसे किसी भी प्राणी को कष्ट न देनेका नाम ही अहिंसा है। मनसे किसी प्राणीका बुरा चीतना, किसीकी भी उन्नति, लाभ वा सुन्दरताको देख कर उसका बुरा चीतना मानसिक हिंसा है। गाली देकर वा निन्दा करके दूसरेकी श्री, मान वा गौरव, प्रतिष्ठाकी हानि करने का नाम वाचिक-हिंसा है। मारपीट करके प्राणियोंको जो दुःख देना है उसका नाम कायिक वा शारीरिक-हिंसा है। इस तीन प्रकारकी हिंसाको त्याग देनेका नाम अहिंसा है. और इसको त्यागनेके अभ्यासको ही अहिंसासाधन कहते हैं। हिंसा और भी तीन प्रकारकी होती है-कृत, कारित और अनुमोदित। जो अपने आप कीजाय वह कृत, जो दूसरेसे कराई जाय वह कारित और दूसरेकी कीहुई हिंसाका अनुमोदन करनेपर अनुमोदित कहलाती है। हिंसाकी उत्पत्ति लोभके, कारणसे, मोहके कारणसे और क्रोधके

कारणसे होती है। सब प्रकारकी हिंसाको त्यागनेका नाम ही अहिंसा है। साधन वा अभ्यासके द्वारा हिंसाको जीना जाता है पहले ही कहचुके हैं, कि वृत्तिका निरोध ही योगसाधना है। हिंसा भी एक वृत्ति है। इसलिये इसका निरोध करना होगा। विपरीत वृत्तिको उठानेके क्रमसे इस वृत्तिका नाश करना होगा। हिंसाकी विपरीत वृत्ति करुणा वा दया है।

यत्नादपि परिक्लेशं हर्त्तुं या हृदि जायते ।
इच्छाभूमिः सुरश्रेष्ठ सा दया परिकीर्तिता ॥

यत्नसे दूसरेके क्लेशका नाश करनेके लिये हृदयमें जिस इच्छाका उदय होता है, उसका ही नाम दया है।

आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय शुभाय च ।
वर्त्तते सततं हृष्टः क्रिया ह्येषा दया स्मृता ॥

सब प्राणियोंको अपनी समान देखकर, उनके हित और शुभ कार्यके लिये निरन्तर जो हर्षका उदय होता है वही दया है।

परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा ।
आत्मवद्वर्त्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥

दूसरे पुरुष, बन्धुबान्धव, मित्र वा शत्रु इन सबको अपनी समान समझनेका नाम दया है।

इस प्रकार सब भूतोंकी सेवाका नाम दया है, इसके अतीत जो वृत्ति है वही हिंसा है। अब समझो, कि हिंसा क्या है। मान लो कि–देशमें अशान्ति होरही है, अधर्मकी धारा बह रही है। ऐसे समय लाठी उठाकर यदि तुम किसीके ऊपर दश बार प्रहार करो तो तुमको हिंसा नहीं होगी, क्योंकि–यह काम भी तुमने सब प्राणियोंके हितके लिए ही किया है। परन्तु किसीने तुम्हारी निन्दाकी है या तुम्हारे बगीचेमेंसे एक फल तोड़कर ले लिया है, यदि उसको पकड़कर मारो तो उसका नाम हिंसा है। कोई चोर

तुम्हारे घरसे एक रुपयोंका भरा बक्स उठाकर लेगया है, ऐसी दशामें यदि तुम अपना रुपया लेजानेके कारण क्रोधमें भरकर उसको राजद्वारमें पकड़वाकर जेल करवा दोगे तो भी वह हिंसा होगी और इस चोरको दण्ड न मिलनेसे यह और दश जनोंकी चोरी करेगा, ऐसा समझकर यदि उसको पकड़कर जेल भिजवाओगे तो तुमको हिंसाका दोष नहीं लगेगा। अधिकतर दया वृत्तिका उत्थापन अभ्यास और साधना करने पर हिंसाका संस्कारतक दूर होकर और अहिंसासाधन होजायगा।

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"

जब हृदयमें दृढ़रूपसे अहिंसा प्रतिष्ठित होजायगी तब दूसरे अपने आप उसके साथ अपने स्वाभाविक वैरभावको त्याग देंगे।

हमारे देशमें एक किम्वदन्ती है, कि-"ब्राह्मणको साँप नहीं काटता है, परन्तु आजकल ब्राह्मणोंको साँपके काटनेसे मरते हुए देखकर बहुतसे लोग कहते हैं, कि-ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व नहीं रहा, इसलिये ऐसा होता है। वास्तवमें यही बात है। हिंसा न हो तो कोई प्रतिहिंसा करे ही नहीं, यह अटल सत्य है। पहले ब्राह्मण अहिंसाप्रतिष्ठित थे, इसलिये ही उनको सर्प नहीं काटते थे। अब भी हृदयमें अहिंसाकी प्रतिष्ठा होजाय तो देखोगे, कि-साँप सिंह तक तुम्हारे सामने अहिंसक बनजायँगे, अहिंसा साधकों के तलुओंको व्याघ्र चाटा करते हैं। ऐसी दशा होने पर ही समझना चाहिये, कि-तुम्हारा अहिंसाव्रत दृढ होगया।

सत्य-

"परहितार्थं वाङ्मनसोर्यथार्थत्वं सत्यम्"

सकल प्राणियोंके हितके लिये वाणी और मनका यथार्थभाव ही सत्य कहलाता है। सकल प्राणियोंके हितके लिये वाणी और मनकी जो स्वाभाविक अवस्था है उसका प्रचार ही सत्य

है। जो सत्य नहीं है वही मिथ्या है। मिथ्या भी कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे तीन प्रकारका है। तथा कृत, कारित और अनुमोदित भी होसकता है। सब प्रकारके मिथ्याको त्याग देनेका नाम ही सत्य है।

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।"

अन्तःकरणमें सत्यकी प्रतिष्ठा होजाने पर कोई क्रिया न करके ही उसका फल मिलजाता है। जब सत्यकी साधना सिद्ध होजाती है अर्थात् जब धोखेसे भी मनमें मिथ्याका उदय न हो जब स्वप्नमें भी असत्यका दर्शन न हो तब समझो, कि-सत्यकी साधना में सिद्धि प्राप्त होगई। ऐसी अवस्था होजाने पर साधक जो कुछ भी कहेगा—क्रिया न करने पर भी उसका फल पा जायगा 'तू नीरोग होजा, ऐसा कहते ही रोगी कुछ क्रिया अर्थात् औषध सेवन आदि तथा यज्ञादि न करके भी रोगमुक्त होजायगा और 'तू कृतार्थ हो' ऐसा कहते ही तत्काल कृतार्थ होजायगा। पुराणों में पाते हैं, कि—अमुक ऋषिने वरदान या शाप देते हुए कहा, कि—यदि मैंने अपने जीवनमें कभी मिथ्या नहीं बोला है तो मेरी बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती। कभी मिथ्या न बोलकर सत्यको अन्तःकरणमें दृढ़रूपसे प्रतिष्ठित करने पर सत्यकी साधना होती है।

अस्तेय

"परद्रव्यापहरणत्यागोऽस्तेयम्।"

पराई वस्तुओंके अपहरणको त्याग देनेका नाम 'अस्तेय' है। मन ही मनमें दूसरेके द्रव्यके ऊपर लोभ होने पर भी उसको चोरी कहते हैं। इसलिये अस्तेय मानसिक, वाचिक और कायिक तीन प्रकारका है। यह भी कृत, कारित और अनुमोदित तीन प्रकारका होसकता है। द्रव्य जहाँका तहाँ ही पड़ारहे—इसका,

उसकी' यह दो दिनकी बात है, फिर उसके ऊपर लोभ कैसा? हमारा उद्देश्य धनसंग्रह नहीं है। हमारा उद्देश्य है उन्नति। ऐसा भाव मनमें जमते ही परधनके अपहरणकी इच्छा दूर होजाती है।

दूसरेका द्रव्य क्या २ है और अपना द्रव्य क्या २ है? सब ही बाहरी प्रकृतिरूप है। मैं पुरुष हूँ, मेरा उनसे क्या प्रयोजन है? मेरा प्रयोजन तो प्रकृतिको त्यागना है। पुरुषको भोग करानेके लिये ही प्रकृतिका इतना प्रपञ्च है, परन्तु पुरुष तो निःस्पृह है। ऐसी धारणा होनेमें पराये द्रव्यमें कभी लोभ होगा ही नहीं और अस्तेयकी साधना सिद्ध होजायगी।

"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।"

अस्तेयकी प्रतिष्ठा होने पर सब धन रत्न साधकके पास चले आते हैं। प्रकृति पुरुषको भोग करानेके लिये अपने रूप, रस, गन्ध, स्पर्शको लेकर कुञ्ज सजाये बैठी है, पुरुष जितना ही दूर जाना चाहेगा, प्रकृति उतना ही अपना सर्वस्व लेकर उसके चरणतलमें अर्पण करेगी। यदि तुम प्रकृतिकी ओरको ध्यान नहीं दोगे तो प्रकृति तुम्हारी दासी बनजायगी। बाहरी प्रकृति तुम्हारी आज्ञाकारिणी होजायगी।

ब्रह्मचर्य

"वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्।"

वीर्यको धारण करनेका नाम ब्रह्मचर्य है। शरीरमेंके शुक्र धातुको अविचल और निर्विकार रखनेके उपायको ब्रह्मचर्य कहते हैं। शुक्र ही शरीररक्षक है। सुश्रुतमें लिखा है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः॥
शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्थितम्।
गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः॥

ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रस्थानं परं स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥

रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा और मज्जासे शुक्र (वीर्य) की उत्पत्ति होती है । शुक्र सौम्य, श्वेतवर्ण, स्निग्ध और बलपुष्टिकारक है । वह गर्भका बीजरूप, शरीरका सार और जीवका वा जीवनका प्रधान आश्रय है । रससे शुक्रपर्यन्त सातों धातुओंके तेजको ओज कहते हैं । यद्यपि यह मुख्यरूपसे हृदयमें रहता है परन्तु यह सर्वदेहव्यापी है और शरीर रक्षाका प्रधान साधन है ।

शुक्रके नष्ट होनेसे ओजका नाश होजाता है, क्योंकि-शुक्र ही ओज है और अष्टम धातुका आश्रय है । ओजको ब्रह्मतेज भी कहते हैं । यूरुपके विद्वान् इस ओजको ह्यूमैन मैग्निटिज्म (Human magnetism) कहते हैं । उनके मतमें भी यह देहकी रक्षा करने वाला एक मात्र पदार्थ है । इसके अभावमें मनुष्यकी सुन्दरता, शारीरिक बल, इन्द्रियोंकी स्फूर्त्ति, बुद्धि, स्मरणशक्ति, धारणा शक्ति आदि सब ही नष्ट होजाता है और ऐसा देह यक्ष्मा, प्रमेह शक्ति-हीनता आदि अनेकों रोगोंका घर बनजाता है और सब कामोंमें उदासीन तथा जड़की समान होकर थोड़े ही दिनोंमें कालका कवल बनजाता है । इसलिये जो कोई भी काम करना हो उसमें देहरक्षाकी आवश्यकता है और देहरक्षाके लिये वीर्य-रक्षा वा ब्रह्मचर्य-साधनकी बड़ी आवश्यकता है ।

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥

ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्यधारण ही सबसे श्रेष्ठ तपस्या है । जो पुरुष इस तपस्यामें सिद्धि पाकर ऊर्ध्वरेता होजाता है वह देवता है, मनुष्य नहीं है । जो ऊर्ध्वरेता है मृत्यु उसकी इच्छाके अधीन

है, वीरता इसके हाथका खिलौना है। वह चाहे तो अद्भुत साधन करसकता है, जिसका वीर्य ऊर्ध्वगामी होता है वह बड़ा आनन्द पाता है। इसके ही प्रतापसे भीष्म और परशुराम जगद्विजयी वीर हुए हैं। इसलिये ही महाशक्तिशाली इन्द्रजित् (मेघनाद) का संहार करनेके निमित्त लक्ष्मणको चौदह वर्ष तक वीर्यधारण (ब्रह्मचर्यपालन) करना पड़ा था।

श्रवणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥

कामप्रवृत्तिके साथ रतिविषयक बातोंको सुनना, कहना, क्रीडा करना, देखना, एकान्तमें स्त्रियोंसे बातें करना, स्त्रियोंके विषयका सङ्कल्प करना, ऐसा निश्चय करना और मैथुन कर्म करना। ये मैथुनके आठ अङ्ग हैं। इन आठोंको त्यागदेनेका नाम ब्रह्मचर्य है। पहले समयमें ब्राह्मण अपने पुत्रका नवम वर्षमें उपनयन(यज्ञोपवीत) कर और ब्रह्मचर्यधर्मावलम्बी बनाकर वेदादिका अध्ययन करनेके लिये गुरुके घर भेजदेते थे। ब्रह्मचर्यकी साधनामें सिद्धि पाजाने पर गृहस्थाश्रममें प्रवेश और विवाह करते थे। जिस मनुष्यका वीर्य एकवार अच्छे प्रकारसे सुरक्षित होजाता है, उसका तो कहना ही क्या है? पुत्र उत्पन्न करनेके लिये जो साधारण व्यय होता है वह उसकी इच्छाके अधीन होता है। परन्तु वे दिन गये, अब तो कुशिक्षासे, कुसङ्गसे, बालक तक वीर्यका व्यय करडालते हैं। बालकोंसे लेकर प्रौढ अवस्थावाले पर्यन्त सब ही क्षणभरके सुखके लिये उचित और अनुचित रीतियोंसे वीर्य का नाश करके वज्रपातसे झुलसेहुए वृक्षकी समान घूमते फिरते हैं और उनकी उत्पन्न की हुई सन्तान और भी निर्वीर्य उत्पन्न

होती है और जीवनमें अनेकों दुर्जय रोगोंकीपीडा भोगकर अकाल में ही कालके गालमें जापडते हैं। यहाँ हमें एक कविका वाक्य याद आता है—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो ये चाम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहङ्गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् ॥

विश्वामित्र पराशर आदि जो महर्षि जल और पत्तोंको खाकर जीवन धारण करते थे,वे भी जब स्त्रीके मुखकमलको देखकर मोहित होगए तो फिर जो घी मिला शाल्यन्न और दही दूध खाते हैं वे मनुष्य यदि इन्द्रियोंको अपने वशमें रखसकें तब तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्रमें तैरने लगे। यद्यपि यह कथन आधुनिक कविका है तो भी विचारने योग्य है। परन्तु योग साधना में तो असम्भव प्रतीत होनेवाली बात भी संभव होजाती है। विश्वामित्र पराशर आदिकी जो बात कही है,वे भी ऐसे भ्रष्ट नहीं हुए थे। योगमें ऐसा काम है,कि-जिसमें स्त्रियोंको देखकर जो उत्तेजना होती है वह दबजाती है और वीर्यका क्षय भी नहीं होता है। ब्रह्मचर्य साधनाका साधारण उपदेश यह है, कि—विपरीत वृत्तिको उठानेके क्रमसे भी इस साधनामें सिद्धि प्राप्त कीजाती है।

"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।"

ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठामें वीर्यलाभ होता है वीर्यका सञ्चय होजानेपर मस्तिष्कमें प्रबल शक्तिका संचय होता है। इस महती इच्छाशक्ति के बलसे मनकी एकाग्रताका साधन सहजमें ही होजाता है। ब्रह्मचर्यके बलसे नरदेहमें ब्रह्मण्य और नारीदेहमें सतीत्वकी निर्मल ज्योति प्रकाशित होती है।

अपरिग्रह-

"देहरक्षातिरिक्तभोगसाधनास्वीकारोऽपरिग्रहः ।,,

देहकी रक्षासे अधिक भोगके साधनको त्यागनेका नाम अपरिग्रह है। दुराकांक्षाको त्यागना और विलासके पदार्थोंकी इच्छाको तथा याचनाको त्यागना अपरिग्रह कहलाता है। मोटी२ बात यह है, कि—लोभको त्याग देना ही अपरिग्रह है।

"अपरिग्रहप्रतिष्ठायां जन्मकथन्तासंबोधः।"

अपरिग्रहकी प्रतिष्ठा होजाने पर पूर्वजन्मकी सब बातें स्मरण हो आती हैं।प्रकृतिके सब पदार्थोंमें निर्लोभ होजाने पर चित्त कहीं बँधाहुआ नहीं रहता है। हम बाहरी प्रकृतिमें जितने ही बँधते हैं उतने ही पूर्वजन्मकी बातोंको भूल जाते हैं। इस जन्मकी भी यही बात है-जो बालक वस्त्रादि विलासके पदार्थोंकी ओरको अधिक खिंचा रहता है उसको पढ़ना लिखना कुछ नहीं आता यह सब ही जानते हैं अथवा जो बाहरी टीपटापमें ही लगा रहता है वह ज्ञानसे बहुत दूर रहता है। जो ज्ञानी होगा। वह त्यागी अवश्य होगा। यदि बाहरी प्रकृतिके सब पदार्थोंसे मनको हटा कर संयमके मार्गमें लेजासको तो पूर्वजन्मकी बातें स्मरण क्यों नहीं आवेंगी ? याचना करने पर दान मिलता है,परन्तु उसमें दाताके पातक इकट्ठे होकर आजाते हैं और वे दान लेनेवालेके लिये बन्धन के कारण होते हैं इस लिये दान लेना भी ठीक नहीं है। पेट भरनेके लिये जितना काम किये विना सरे नहीं उतना ही काम करना चाहिये। इस संसारमें कै दिन रहनेको आये हो ? फिर इतना आयोजन क्यों ? ऐसे ज्ञानकी दृढ़ धारणा ही निर्लोभ होनेका उपाय है।

इन सब बातोंकी साधना होजाने पर यम-साधन होता है। इन सब बातोंको सुनकर पहले तो तुम अपने मनमें कहोगे, कि-

यह बड़ा कठिन काम है, परन्तु कठिन कुछ भी नहीं है, ये बातें तो मनुष्यका अवश्य कर्त्तव्य हैं। मनुष्य बननेके लिये सब देशों के और श्रेणीके स्त्री पुरुषोंको इन बातोंमें सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। ऐसा बिना किये मनुष्य ही नहीं होसकते मनुष्य और पशुमें कुछ भेद ही नहीं होसकता साधनाका उपाय पहले ही कह चुके हैं, इनकी विपरीत वृत्तिको उठानेपर इनका नाश होजाता है।

साधनाका अर्थ है अभ्यास, यह भी पहले ही बताचुके हैं। परन्तु अभ्यासके लिये भी शिक्षा चाहिये। अभ्यास कैसे करना चाहिये, यह भी सुनलो—तुम अपने मनमें दृढ़ करलो, कि, इस सप्ताहमें मैं ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। कदाचित् पहले सप्ताहमें तुम निश्चयसे गिर भी गये तो दूसरे सप्ताहमें अवश्य ही सफलता मिलेगी। फिर दो सप्ताहका नियम करो, इसप्रकार क्रम क्रम से अभ्यास होता चला जायगा। सबके ही विषयमें यह बात है। प्रतिज्ञा करके—समयका नियम बाँधकर यमके साधनमें उत्तीर्ण होते चलेजाओ।

नियमसाधन

योगशास्त्रमें कहा है-"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" अर्थात्-शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान इस पाँच प्रकारकी अनुष्ठानयोग्य क्रियाका नाम नियम है और इनकी साधनाका नाम ही नियम-साधन है। शौचका अर्थ है-शुद्धता अर्थात् शुद्धभावसे रहना। शौच दो प्रकारका है-बाहरी और भीतरी। मट्टी, जल गोबर आदिसे देह आदिको शुद्ध करनेका नाम बाहरी शौच है और सत्त्वगुणको बढानेवाले पदार्थोंके आहार आदिसे द्वारा चित्तको माँजनेका नाम भीतरी शौच है। हरएक मनुष्य प्रतिदिन अपने देहको साफ करता है, कोई मट्टी जलसे कोई गोमय जलके द्वारा और कोई साबनके जलसे

इसप्रकार किसी भी उपायसे हो नरनारी अपने देहका बाहरी शौच किया करते हैं। परन्तु योगीका शौच इन सबोंसे जुदाही होता है। यह भेद मनके भावसे होता है। मैं ईश्वरकी उपासना करूँगा, ज्ञान प्राप्त करूँगा, पापके बन्धनसे मुक्त होऊँगा यह भाव योगीके हृदयका होता है, योगी देहका बाहरी शौच करतेमें अपने चित्तमें ऐसा ही विचार रखते हैं और देहके सुखमात्रको चाहनेवाले पुरुष जो विचार रखते हैं इन दोनों विचारोंमें पृथिवी आकाशका अन्तर है। यह अन्तर ही दोनोंको दो मार्गोंमेंको लेजाता है। काम एक होतेहुए भी मनके भावके अनुसार उसका फल जुदा रही होता है। फिर भीतरी शौच उसके साथ मिलकर काम करता है मद्य, मांस आदिका भोजन, वैरीको उत्तेजना देनेवाले गति आदि ये सब दैहिक सुख चाहने वाले पुरुषोंको कुमार्गमेंको लेजातेहैं, । घृत दुग्ध आदि सात्त्विक पदार्थोंका भोजन अल्प भोजन और पुष्पमाला चन्दन आदिसे चित्त सन्मार्गमेंको जाता है। तात्पर्य यह है, कि बाहरी और भीतरी शौचका कुछ दिन अभ्यास करने पर देह तथा देहमेंका रक्त और मन सब शुद्ध होजाता है। अमृत नामक चिदात्मा वा आध्यात्मिक तेज परमशुद्ध और पूर्णबलवान् हो उठता है।

"शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसङ्गः" शौचकी सिद्धिसे अपने शरीर पर तुच्छताका भय उत्पन्न होता है और दूसरोंके सङ्गकी इच्छा हट जाती है। बाहरी शौचका अभ्यास करते २ कामसे अपने शरीर पर एक प्रकारकी घृणा उत्पन्न होजाती है, उस समय जलके बुलबुलेकी समान मरणधर्मा और मलमूत्रादिसे भरेहुए देहके ऊपर आसक्ति कैसे रहसकतीहै?परायेदेहकोस्पर्श करनेकी जो बडीभारी इच्छा होती है वह भी दूर होजाती है। "सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि" भीतरी शौचसे सत्त्वशुद्धि, सौमनस्य

(खेदके अनुभवसे रहित मनकी प्रीति) एकाग्रता, इन्द्रियका जय और आत्मदर्शनकी योग्यता प्राप्त होती है। जिस समय भाव-शुद्धिरूप भीतरी शौच पराकाष्ठाको पहुँचजाता है, उस समय चित्त एक प्रकारका अभूतपूर्व और सुखमय और प्रकाशमय बनजाता है, उस समय खेदका जरा भी अनुभव नहीं होता है, सदाके लिये पूर्ण और परमतृप्त होजाता है, इस पूर्णताको ही सौमनस्य कहते हैं। सौमनस्यके उत्पन्न होनेपर एकाग्रशक्ति प्रकट होजाती है तब मनका एकाग्र होना बहुत सहज होजाता है तथा इन्द्रियजय होजाता है, इन्द्रियजय हुआ, कि–चित्त निर्मल होजाता है। जैसे निर्मल दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसे ही निर्मल चित्तमें आत्माकी छवि चमक उठती है, उस समय आत्मा दर्शनका गम्य होजाता है। शौचके साधनमें सिद्धि होजाने पर तुम्हारी समझमें आवेगा कि–तुम जो कुछ थे उससे बदलगये हो, तुम्हारे विषादसे मैले हुए हृदयके कोनेमें सुखके फूलने खिलकर तुमको आनन्दमय करडाला है। उस समय तुम्हारे चारों ओर सुखकी तरङ्गें, आनन्दकी हिलोरें क्रीड़ा करने लगेंगी, तब तुमको मालूम होगा कि–तुमने धर्मका जीवन पालिया है। पहिले अधर्मके जीवनमें जो दुःखके दंशनका अनुभव करते थे धन पास था, सुन्दरता थी, सुखभोगके सामान थे, धन, जन, मान, यश था, फिर भी जो तुम कमी ही कमी समझते थे वह अब नहीं रहसकता, अब धर्मजीवनके सुखका दीपक प्रज्वलित होउठा है।

प्राणधारणके अनुकूल तृष्णासे अधिक जो तृष्णा उसके त्यागका नाम सन्तोष है। सन्तोषकी साधनामें सिद्धि पाजानेपर फिर मनुष्यके सुखका पारावार नहीं रहता है। सन्तोषको पाजाने पर शान्ति तो उसके हाथका खिलौना होजाती है। जहाँ सन्तोष है वहाँ स्वर्गका सोपान बनाहुआ है। जिसमें मनुष्यका सब प्रकार

का प्रयोजन सिद्ध होजाय और प्राणधारणकी अनुकूलता पाकर तृष्णासे रक्षा होजाय, उस उपायको करनेसे मनुष्यका चित्त निरन्तर निर्मल और बराबर सुखी रहता है, इसके सिवाय तृष्णा ही मनुष्यको जन्मभर सुखकी मरीचिका दिखाकर पापके मार्गमेंको ले जाती है। जगत्में इच्छाका अन्त नहीं है। धनबल, जनबल और विषयबल किसीसे भी तृष्णाका निवारण नहीं होता है। खूब धन पाओ, खूब खाओ, पहरो, परन्तु तृष्णाका अन्त नहीं आता, केवल देओ देओ, लाओ लाओ बराबर बना रहता है। चाहे जितना धन पाजाओ, चाहे जितने विषय भोगो कितना ही रूप यौवन पाजाओ, चाहे जैसा चित्तानुकूल स्त्री पुत्र आदि पाजाओ परन्तु आशाका अन्त नहीं आता, प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं होती ऐसी तृष्णा वा इच्छा ही दुःखका कारण है। वस्तुओंके तत्त्वका विचार करने पर वस्तुओं पर अश्रद्धा होने पर ही वास्तविक तृष्णाकी निवृत्ति होसकती है। मानलो, कि-तुम एक सुन्दरीके रूप यौवनको देखकर मोहित होगए परन्तु घरमें तुम्हारी अपनी स्त्री है, तुम विचारनेलगे, कि-यह स्त्री तो हमारी स्त्रीसे बड़ी सुन्दर है हमारी स्त्रीके बालबच्चे होचुके हैं और यह तो नवयुवती है। तुम्हारी कामपिपासा बढ़गई, उसके न मिलनेसे दुःखकी आगमें जलकर मरनेलगे और यदि वह मिलगई तो भी तुमने क्या सुख पाया? सुखकी आशामें दौड़कर गए, परन्तु घोर पश्चात्ताप लेकर लौटे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। इसलिये पानेमें भी दुःख है और न पानेमें भी दुःख है परन्तु यदि विवेकी होते, यदि तुम तत्त्वविचारक होते तो सहज ही विचारकर देख सकते थे, कि-क्या देखकर तुम्हें यह प्यास लगी है? किसके लिये तुम्हारी यह वासनाकी अग्नि भड़कउठी है? उसके देहकी सुन्दरता ही तो देखी है। परन्तु देह क्या है? पृथिवी, जल, तेज, वायु और

आकाश इन पञ्चमहाभूतोंकी समष्टि अवस्थाके सिवाय और कुछ तो है ही नहीं। जिसके विकाशसे सब जगत् ठहरा हुआ है जो इस विश्वकी सब वस्तुओंमें विद्यमान है, उसके लिये एक सीमाबद्ध स्थानमें तेरी इतनी खिचावट क्यों है? विशेषकर वह रूप, वह यौवन कितनी देरके लिये है? वह बालकपनमें क्या था? जवानीमें क्या होगया? और बुढ़ापेमें क्या होजायगा? इसकी आलोचना करनेसे समझसकेगा, किन्तु जिसको चाहरहा है वह क्या पदार्थ है? उसका कितना उलटफेर होजाता है? और अन्तमें उस देहका क्या परिणाम होगा? इस सबका विचार करना होगा। यह जो दुर्बल बुढ़िया मृत्युशय्या पर पड़ी है, यह भी अवश्य ही एक दिन युवती थी, परन्तु इस समय क्या होगया? और इस जवानीमें ही यदि रोग आदबावे तो इस सुन्दर देहको प्रेतके देहसे भी अधिक भयानक बना सकता है। खाने पीनेके और घर मन्दिर आदि पदार्थोंको भी ऐसी ही दशा है। इस वस्तुको कौन लेता है, कौन खाता है और कौन खायगा? यह जो तुम्हारे घरके पास पुरानी स्मृति दिलानेवाला महल बना हुआ है यह किसका बनाया हुआ है जानते हो? निश्चय ही किसी धनगर्व-शालीका बनाया हुआ है, परन्तु वह बनानेवाला कहाँ है? न जाने इस अज्ञात जगत्के अज्ञात परदेके भीतर अज्ञात नाटकका अभिनय कररहा है। सब यहाँ ही पड़ा रहजाता है, कुछ भी संग नहीं जाता फिर तुम्हारी ऐसी तृष्णा क्यों है? कितनी देरके लिये यह यह दौड़भाग करते हो? इसप्रकार मनको समझालेने पर जब अभ्यास होजायगा तब मनको जो कुछ अनायासमें मिल जायगा, उसमें ही सन्तुष्ट होजायगा। ऐसा करने पर ही संतोष प्राप्त होता है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

"वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।"

हिंसा, द्वेष, तृष्णा आदि पूर्वोक्त मनकी तामसी वृत्तियोंका दूसरा नाम वितर्क है। वितर्क वृत्ति योगका वैरी है, इसलिये हरएक वितर्कवृत्तिके विरुद्ध क्रमसे उसका नाश करनेवाली विपरीत वृत्तिको उत्तेजित करना पडता है अर्थात् हिंसा आदिके विरुद्धक्रमसे अहिंसा आदि वृत्तियोंको उठाना पडता है। ऐसा करते २ क्रमसे सब वितर्क-वृद्धि नष्ट होजाती है।

"वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभमोहक्रोधपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।"

वितर्क वा हिंसा आदि तीन प्रकारके होते हैं। इच्छापूर्वक वा अपने कियेहुए अथवा दूसरेके अनुमोदन पर कियेहुए वे तीन प्रकारके वितर्क वा हिंसा आदि वृत्तियें लोभ, मोह और क्रोध-पूर्वक तथा अल्प, अधिक और मध्यभावसे उत्पन्न होती है। चाहे जिसप्रकारसे भी हिंसा आदि करो उससे दुःख, अज्ञान और असंख्यों प्रकारका दुःखमय फल अवश्य ही होगा और उसकी ही गुरुरूपसे भावना करनी होगी, इसका ही नाम प्रतिपक्षभावना है। हिंसा स्वयं करो, दूसरेसे कराओ अथवा दूसरेके हिंसा करने पर उसका अनुमोदन करो तो तुम हिंसक अवश्य बनोगे। तुम मांस खाते हो, परन्तु अपने हाथसे पशुको नहीं मारते हो जैसा मारना पाप है वैसा हो खाना भी पाप है दोनों ही हिंसा हैं अथवा तुम न मांस खाते हो, न पशुवध करते हो, परन्तु जो पशुवध करता है या मांस खाता है, उसके साथ बैठकर भोजन करते हो तो भी तुम हिंसाके भागी हो। एक मनुष्यने तुम्हारा अनिष्ट किया है, तुमने विचारा, कि-मैं इसका बदला लेनेके लिये कुछ भी नहीं करूँगा, भगवान् ही इसका फल देंगे। अपने हाथसे उसका अनिष्ट करनेमें तुम्हें जो पातक होता वही पातक ईश्वरके ऊपर भार रखनेसे भी होगा। हाँ उसमें तीव्रता, मध्यमता वा

मृदुता हो यही दूसरी बात है। तात्पर्य यह है,कि–किसी असद् वृत्तिको दबानेके लिये उसकी विपरीत वृत्तिको उठाकर पहिली वृत्तिको नष्ट करदो।

"सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः" सन्तोषसे योगी एक प्रकारका अनुपम सुख पाता है। वह सुख विषयका सुख नहीं है, इस लिये उसमें घटी बढी नहीं होती,किन्तु वह निविड़ सुख होता है।

ब्रह्मचर्य, सत्य, मौन, देवी देवताओंकी पूजा, जप, होम आदि नित्यधर्मका अनुष्ठान, वाणीका संयम सुख, दुःख द्वन्द्वोंको सहना और मित भोजन आदिका नाम तपस्या है। तपस्याका साधन बिना किये योगसिद्धि हो ही नहीं सकती। "नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति।" क्योंकि-मनुष्यके अन्तःकरण में अनादिकालसे वासना और अविद्याका संस्कार जमाहुआ है उसका क्षय तपस्यासे ही होता है। वासनाके दूर हुए बिना चित्तमें एकाग्रता नहीं आसकती जैसे सूखाहुआ तिनका विक्षिप्त वायुके प्रवाहमें चारों ओरको उडार फिरता है, ऐसे ही वासना में चित्तकी वृत्तियें चारों ओरको भागती रहती हैं। तपस्या वासना को क्षीण करके चित्तको एकाग्र करदेती है।

मनुष्यका मन,इन्द्रियें और शरीर आदि प्रसङ्गप्रवण हैं अर्थात् जिस कामको करते हैं उसमें ही आसक्त होजाते हैं और उस कामको ही करना चाहते हैं। गोपालको सवेरे ही उठकर भ्रमण करनेका अभ्यास है,वह भोर ही उठकर बिना भ्रमण किये रह ही नहीं सकता, माधवको दिनमें भोजन कर सोनेका अभ्यास है,चाहे सौ काम पड़े रहो वह बिना सोये नहीं रहसकता। तात्पर्य यह है,कि-इस जगत्के जीवमात्र अभ्यासके दास हैं इस अभ्यासके सूक्ष्मभावको ही संस्कार कहते हैं। इस संस्कार-वासनाके बिना मनुष्य जब साधारण सांसारिक काम भी नहीं

करसकता तो अतीन्द्रियग्राह्य सूक्ष्म राज्यकी आलोचना और अभ्यास कैसे करेगा ? इसलिए योगी बननेके लिए तपस्याके द्वारा इस सब अभ्याससे दूर जाना होगा । तपस्याके द्वारा हरएक कामको इच्छापूर्वक (जिस समय जिस कामको करनेका विचार हो उसको उसी समय) करनेका उपाय करना होगा । यदि चाहें तो दो रात जागकर कटादें और चाहें तो तीन राततक पड़े सोते रहें । चाहे जिस दिन भोजन न करें और बहुतसा खावें तब भी कष्ट न हो,इसके लिये व्रत, नियम, उपवास आदिका अनुष्ठान करना पड़ता है,इसमें क्रमसे संस्कार नष्ट होजाता है । संस्कारके नाशका यह अर्थ नहीं है,कि-सर्वथा संस्कार नष्ट ही होजाता हो,किन्तु सूक्ष्म अवस्थामें आजाता है, परन्तु वह इतना सूक्ष्म होजाता है, कि उस समय उसमें योगमें विघ्न डालनेकी शक्ति नहीं रहती है । "ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः । तपस्यासे संस्कार वा संस्कारोंके क्लेश सूक्ष्म होजाते हैं, उस समय वे प्रतिलोम परिणामके द्वारा चित्त के साथ क्षयको प्राप्त होजाते हैं । संस्कारोंका सूक्ष्म होना उनके विनष्ट होजानेके ही समान है । जलाहुआ बीज होता है भले ही परन्तु उसके अंकुर उत्पन्न नहीं होता है,ऐसे ही तपस्यासे जले हुए संस्कारसे भी भोगादिकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती है । तपस्याके फलसे कभी २ एकायकी दूरकी वस्तुको देखनेकी और दूरकी बातको सुननेकी शक्ति प्राप्त होजाती है । "कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः" । अशुद्धिका क्षय होजाने पर दूरका श्रवण और दूरदर्शन आदिकी शक्ति प्राप्त होती है । पहले कहचुके हैं, कि संस्कार ही हमारा आवरण है । संस्कारों ने सूक्ष्मदशामें हमारे अन्तःकरण और इन्द्रियोंकी सब वृत्तियोंको ढकरक्खा है । तपस्यासे उस संस्कारका नाश होजाने पर दूर-

दर्शन वा दूरश्रवण आदि होसकेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? मान लो कि-तुम खानेके लिये परम स्वादिष्ट शाक आदि राँधते हुए उसके सुन्दर स्वादकी भावना कररहे हो ऐसे समयमें तुम्हारा पुत्र आकर कुछ बात कहगया, स्वादके विचारमें लिप्त होनेके कारण तुम उसको सुन नहीं सके,परन्तु वह चिन्तवन यदि तुम्हारे मनमें नहीं होता तो उस बातको अवश्य ही सुनलेते चिंता का सूक्ष्मभाव संस्कार, आसक्तिका सूक्ष्मभाव संस्कार ये सब संस्कार ही हमें दूरकी बातें देखने सुनने वा जानने नहीं देते। जिन्होंने,तपस्याके द्वारा संस्कारका क्षय किया है वे दूरकी बातको सुननेके और दूरके पदार्थको देखनेके अधिकारी हुए हैं।

प्रणव और सूक्तमन्त्रादिके जप और वेद तथा मोक्षशास्त्रके अध्ययनको स्वाध्याय कहते हैं। स्वाध्यायकी साधना करने पर ईश्वरमें रति और पार्थिव जड़ प्रकृतिमें आकर्षणकी कमी होजाती है। आत्मतत्त्व, परतत्त्व, रसतत्त्व और ईश्वरतत्त्वमें ज्ञान श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और प्रेम होता है इसका कारण यह है, कि-इन सब विषयोंकी आलोचना करते २ मनकी गति एकमुखी होजाती है। मनकी सब शक्तियें इकट्ठी होकर मनके ऊपर ही आपड़ती हैं। जैसे सूर्यकी तेज किरणोंके समीप अतिअन्धकार-मय स्थान भी अपने गुप्त रहस्योंको दिखादेते हैं। इसप्रकार ही वेदादिशास्त्रकी आलोचनारूप स्वाध्यायकी साधनामें एकाग्रचित्त होजाने पर वे अपने अत्यन्त गुप्त रहस्योंको भी प्रकाशित कर देते हैं। उस समय मालूम होता है, कि—मैं क्या करूँ ? जगत् क्या है? ईश्वर क्या है? क्यों आया हूँ?कहाँ जाऊँगा। इस समय भी इन सब बातोंका तुम मनमें चिन्तवन करसकते हो परन्तु स्वाध्यायके बादका चिन्तवन और इस समयके चिन्तवनमें बड़ा भेद होता है वनमें बाघ है, यह बात सुनते ही जैसे वनके बाघका विश्वास

होजाता है। वृक्ष पर भूत है, यह सुनकर जैसे वृक्षके भूतका विश्वास करलेते हैं, ऐसे ही ईश्वरमें या आत्मतत्त्वमें विश्वास करलिया जाता हैं, परन्तु वह विश्वास संदेहमिश्रित विश्वास है। जिसमें संदेह होता है वह सदा स्थिर नहीं रहता और स्वाध्याय साधनाके बाद जो विश्वास होता है वह वनमें जाकर बाघको देख आनेपर होनेवाले विश्वासकी समान, वृक्षपरके भूतको देख आनेपर होनेवाले विश्वासकी समान दृढ़विश्वास होता है। स्वाध्यायकी साधनामें मनुष्य विश्वासकी असली भूमिमें पहुँचता है। इस समय ही मनुष्यके धर्मजीवनका शुभ अन्नप्राशन होता है। इस समय ही मनुष्य नए उपनयनके नवीन सूत्रके कण्ठमें साधारण करके कोई ईश्वर है या नहीं, इसका दर्शन स्वयं करसकता है। स्वाध्याय-साधनामें सिद्धि प्राप्त होजाने पर उच्चश्रेणीके प्राणी जैसे देवता, अप्सरा, गन्धर्व आदिके दर्शनको पासकता है। हाँ जैसे उच्च श्रेणीके प्राणीके दर्शनकी इच्छा होगी, वैसा ही अभ्यास भी अधिक करना होगा "स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः" स्वाध्याय की साधनामें सिद्धि होजानेपर अर्थात् वारम्वार मन्त्रोच्चारण, स्तुति पाठ और रूपका ध्यान करते २ जब अन्तःकरणकी उत्कृष्ट अवस्था होजाती है तब उस स्वाध्यायनिष्ठ पुरुषके नेत्र अनेकों दिव्य मूर्त्तियोंका दर्शन करनेके योग्य होजाते हैं।

ईश्वरप्रणिधानके विषयमें भगवान् पतञ्जलि कहते हैं, कि-भक्तिके साथ ईश्वरकी उपासना करना ही ईश्वरप्रणिधान कहलाता है। इस उपासनासे जीवकी समाधि लगजाती है। कायिक वाचिक और मानसिक सबही कामोंमें अपनेको ईश्वरके अधीन जानकर–ईश्वरमें अपने आपको समर्पित करके फलकी प्राप्ति पर दृष्टि न रखकर ईश्वरका ध्यान करे। इसमें मनुष्यके आत्मामें ईश्वरका अनुग्रह दीखने लगता है। स्मरण, मनन, कीर्त्तन, आदि

ईश्वरका प्रणिधान है। ईश्वर क्या पदार्थ है, इस बातकी आलोचना करना भी आवश्यक है, इस बातको ठीक किये विना ईश्वरके ऊपर विश्वास हो ही नहीं सकता। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" क्लेश कर्म, विपाक और आशय जिसको छू भी नहींसकते, सकल संसार आत्मा और सकल मुक्त आत्माओंसे जो पृथक् है वही ईश्वर है। वितर्कवादी कहते हैं; कि—ईश्वर है, यह बहुत अच्छी बात है, परन्तु उसकी उपासना करनेकी जीवको क्या आवश्यकता है? हम अपने कर्मफलके संस्कारको लेकर हायर करतेहुए मरेजाते हैं। ऐसे संस्कारको दूर कर सकने पर ही जहाँकी वस्तु तहाँ ही लौटकर आजायगी। योगके द्वारा संस्कार नष्ट होसकता है, फिर ईश्वरकी उपासना करनेकी क्या आवश्यकता है। जब तक जीवके कर्मफलका संस्कार है, तबतक उसको सहस्रवार पुकार कर भी कोई मोक्षदान नहीं देसकता और कर्मबीजके दग्ध होजाने पर ईश्वरके कुपित होने पर भी उसको नहीं रोकसकता, फिर उसकी उपासनाका क्या प्रयोजन है यह बात हमारी समझमें नहीं आती। ईश्वरोपासनाका कुछ प्रयोजन नहीं होता तो ज्ञानवृद्ध ऋषिगण तथा सब देशोंके विवेकी विद्वान् ईश्वरोपासना करनेकी व्यवस्था देते ही नहीं। वह प्रयोजन क्या है, इसकी ही कुछ आलोचना करेंगे।

जीवात्मा क्लेश आदि पाँच प्रकारके विषयोंको चित्तके साथ एक होकर भोगरहा है और इस भोगके कारणसे ही जीवात्मा कहलाता है, परन्तु ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक और आश्रयके पार है अब वह जीवके मुक्त होनेके लिये ऐसे कौनसे विषयकी भावना करनी होगी, कि—उसके सारूप्यको पाकर हम मुक्त होसकें। भावनामें जो उसका सारूप्य प्राप्त किया जाता है उससे प्रतीत

होता है तुम विशेषरूपसे जानते हो भ्रमरी एक कीडेको पकड कर ले जाती है वह कीडा उसके भयसे उसका ध्यान करते २ भ्रमरी ही बनजाता है। यदि तुम मेरा एकांत मनसे ध्यान करते हो तो तुम्हारा स्वभाव मेरासा ही होजायगा। और एक बात है। भगवान्‌की भावना करने पर उनकी शुद्ध निर्मल ज्योति फैलकर जीवके चित्तको भी निर्मल करदेती है। मालूम होता है, तुम जानते हो, कि-चिन्ता शक्तिकी आकर्षण शक्ति बडी ही अद्भुत है। चिन्ताशक्तिके आकर्षणसे प्रबल शक्तिवाले वृक्ष आदि को भी खेंचलिया जासकता है, मनुष्यको वशमें करके आज्ञाकारी पुतलेकी समान बनालिया जासकता है वह चिन्तवन यदि दिनरात अचिन्त्य पदार्थके ऊपर जापडे तो उससे ही हमारा क्लेश,कर्म, विपाक और आशयरूप कठोर भाव हृदयमेंसे दूर होजासकते हैं, इसके लिये ही ईश्वरोपासनाकी आवश्यकता है, यह बात याद रखनी चाहिये।

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय किसको कहते हैं, यह भी देखलेना चाहिये। क्लेश अज्ञान आदि पांच प्रकारका है। जिसको कि आत्मा चित्तके साथ एक होकर भोगता है और और जिसके होनेके कारणसे आत्मा जीव बनाहुआ है। कर्मका अर्थ है—कायिक वाचिक और मानसिक सब प्रकारकी क्रिया, जिसको कि-हम सदा किया करते हैं। विपाकका अर्थ है—कर्मफल जोकि-जीवके सुख दुःख आदिको भोगनेका कारण होता है। आशयका अर्थ है—संस्कार। कर्मको कर चुकने पर चित्तमें जो किये हुए कर्मका भाव जमजाता है वही संस्कार कहलाता है।

योगियोंके मनमें ईश्वरप्रणिधान वा उपासना करनेका सहज और सरल उपाय यह है—"तस्य वाचकः प्रणवः" ईश्वरका वाचक प्रणव (ॐकार) है अर्थात् ॐकहनेसे साधकके हृदयमें ईश्वरके

स्वरूपका उदय होजाता है। क्यों होजाता है, इसका उत्तर देना बड़ी कठिन समस्या है। ईश्वरके साथ ॐकारका बड़ा घनिष्ठ संबन्ध कबसे, और क्यों स्थापित हुआ है, इसको कोई नहीं बता सकता, परन्तु यह निश्चय है, कि-प्रणव और ईश्वरका अतिघनिष्ठ सम्बन्ध है। "तज्जपस्तदर्थभावनम् प्रणवका जप-यथावत् उच्चारण, उसके अर्थकी भावना और उसमें मनको जड़ देनेका नाम ही ईश्वरोपासना" है योगी दूसरी प्रकारकी उपासनाके पक्षपाती नहीं हैं। संसारके कामकाज करते हुए भी योगी इस ज्ञान और इस ध्यानमें निमग्न रहते हैं महात्मा तुलसीदासजीने कहा है-

तुलसी ऐसा ध्यान धर जैसे ब्याही गाइ।
मुखसे तृण चारा चुगे चित निज बछहि पाइ॥

जैसे ब्याही हुई गौ मुखसे चारा चुगती है परन्तु चित्तको अपने बच्चेमें लगाये रहती है, ऐसे ही संसारके काम करते रहो, परन्तु चित्त भगवान्‌को अर्पण किये रहो। ऐसा करनेसे चित्त सहजमें ही एकाग्र होजाता है।

यथावत् उच्चारण करने पर ही प्रणव सार्थक होता है। अ, उ,-म्-इन तीन अक्षरोंका ॐ बना है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप ये तीन अक्षर सत्व, रज और तमका व्यक्त बीज हैं। सङ्गीत शास्त्रके ज्ञाताओंने स्वरके उदारा, मुदारा और तारा ये तीन भेद किये हैं। ॐ शब्दका उच्चारण करने पर जो स्वरकी झङ्कार उठेगी, उसमें ये तीन विभाग होंगे और जीवके निवास स्थान रूप षट्दल कमलोंमेंसे पहले स्वरकी उत्पत्ति होगी, फिर अनाहत प्रतिध्वनि करके सहस्रारमें गूँजने लगेगा। इसप्रकार एक साथ स्वरको बजाना होगा। जोरसे चिल्लाने मात्रसे ऐसा नहीं होगा। मनही मनमें कहनेसे भी ऐसा स्वरकम्पन किया जासकता

है। परन्तु गानेका स्वर जैसे लिखकर नहीं समझाया जासकता, ऐसे ही प्रणायामका यह उच्चारण भी मुखसे नहीं बतायाजासकता, इसका उच्चारण किसी अभ्यासी योगीसे सीखनेमें ठीक रहता है।

"ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

निरन्तर प्रणवका जप और प्रणवके अर्थका ध्यान करते २ जब चित्त निर्मल होनेको आजाय, उस समय प्रत्यक्चेतन अर्थात् शरीरके भीतरका आत्मा यथार्थ ज्ञानका गोचर होता है और उस समय कोई विघ्न न रहकर निर्विघ्न सिद्धिकी प्राप्ति होती है।

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शना-
लब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।,,

विषयभोगकी अयोगी अवस्थामें यथार्थ आत्मज्ञान और समाधिलाभ न होनेका जो कारण है उसका ही नाम विघ्न है। विघ्न अनेकों हैं। उनमें ये कुछ विघ्न प्रधान हैं, यथा—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थिति। धातुओंमें विषमता होनेसे जो ज्वर आदि होजाता है उसका नाम व्याधि है। मनकी अक्षमता (इच्छा होने पर भी काम करनेकी शक्ति न होना) स्त्यान कहलाता है। योगसाधना करसकूँगा या नहीं अथवा योगसाधनामें कोई फल है या नहीं ऐसे विचारका नाम संशय है। चित्तकी उदासीनताको नाम प्रमाद है। जिससे योगमें प्रवृत्ति नहीं होती है उस शरीर और मनके भारीपनका नाम आलस्य है। विषयतृष्णाका नाम अविरति है। एक वस्तुको दूसरी वस्तु समझ लेना भ्रमदर्शन कहलाता है, जैसे कि—सीपीके टुकड़ेको चाँदी समझलेना। योगमें भ्रम यह होता है कि-जो योगका साधन है उसको योगका साधन न समझना और जो साधन नहीं है उसको साधन समझलेना। किसी प्रतिबन्धक कारणसे योगकी अवस्थामें न पहुँचना अलब्ध-

भूमिकत्व कहलाता है, जैसे, कि—योगका आरम्भ करके किसी सिद्धिका लक्षण न दीखनेपर चित्तमें विक्षेप होना कि-यह तो वृथा परिश्रम है। चित्तकी अस्थिरता अर्थात् योगकी किसी अवस्थाको पाजाने परभी उसमें चित्त स्थिर वा सन्तुष्ट न होना अनवस्थितत्व कहलाता है। इसमेंसे हरएक ही समाधिके लिये विघ्नरूप है,इन सब दोषोंके दूर हुए विना एकाग्रता वा समाधि नहीं होसकती। ये सब दोष रजोगुण और तमोगुणके प्रभावसे आकर चित्तको इधर उधरको विक्षिप्त करतेहुए एकाग्र नहीं होने देते हैं। पीछे बताई ईश्वरोपासना वा योगके अङ्गोंकी साधना करनेपर ये सब दोष लुप्त होजाते हैं, इन सब दोषोंके दूर होजानेपर शक्ति स्थायी होती है, समाधि लगने लगती है।

"तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।,,

पीछे कहे सब दोषोंको दूर करनेके लिये एकतत्त्वाभ्यास करना होता है। एकतत्त्वके अभ्याससे उसमें मन लगजाने पर चित्तविक्षेप और उसके उपद्रव दुःख आदि नष्ट होजाते हैं किसी—एक इच्छित तत्त्वके ध्यानको एकतत्त्वाभ्यास कहते हैं। इच्छित-विषय, जैसे ईश्वरकी बहुतसी मूर्त्तियें कल्पना कीगई हैं—विष्णुमूर्त्ति, कृष्णमूर्त्ति, शिवमूर्त्ति, सूर्यमूर्त्ति, दुर्गामूर्त्ति इत्यादि बहुतसी मूर्त्तियें हैं। जिस साधकको जो मूर्त्ति अच्छी लगे उसका ही ध्यान करने पर एकतत्त्वाभ्यास होता है। जो मूर्त्ति जिसके मानसिक गठनके अनुकूल हो उसको उसका ही ध्यान करना चाहिये।इसको ही इष्टतत्त्व कहते हैं। इष्ट विश्वासको कभी नहीं त्यागना चाहिये। जब साधकका भेदज्ञान दूर होजाय तब भी उस मानसी प्रतिमाका ध्यान नहीं त्यागना चाहिये।

एक समय हनुमान्जी और अर्जुनका साक्षात्कार होगया। अर्जुनके साथमें श्रीकृष्ण भी थे। हनुमान्जीको किसी कामसें

प्रवृत्त करनेके लिये अर्जुन और श्रीकृष्ण उनके पास गए थे। अर्जुनकी प्रार्थनाको पूरी करना स्वीकार करके हनुमान्ने कहा, कि-आप जरा ठहरिये, मेरा इष्टदेवके पूजनका समय होगया है, मैं पूजन करके निबटलूँ। अर्जुनने आश्चर्यमें होकर कहा, कि-मैंने सुना है, कि—तुम साक्षात् रुद्रके अवतार हो, परन्तु आपके इस भ्रमको देखकर मुझे सन्देह होगया है। तुम रामचन्द्रके उपासक हो, तुम्हारे सामने तुम्हारे इष्टदेव श्रीकृष्ण विद्यमान हैं. फिर साक्षात् दर्शनको छोडकर अपरोक्ष दर्शनको क्यों चाहते हो? क्या श्रीकृष्णकी उपासनासे ही रामकी उपासना नहीं होजायगी? श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्रमें क्या कुछ भेद है? तुम्हारे इस भेदभावको देखकर मैं वास्तवमें बडी उलझनमें पडगया हूँ, यह सुनकर परमज्ञानी हनुमान्जीने मुस्कराकर कहा, कि-

श्रीनाथे जानकीनाथे न भेदः परमात्मनि ।
तथापि मम सर्वस्वो रामः कमललोचनः ॥

यद्यपि मैं जानता हूँ, कि-लक्ष्मीपति और सीतापतिमें कुछ भेद नहीं है और दोनों ही एक परब्रह्म परमात्मा हैं, परन्तु तो भी कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व—धन हैं।

इसका ही नाम इष्टनिष्ठा है, इसको ही एकतत्त्वाभ्यास कहते हैं। महात्मा तुलसीदासजीने और भी कहा है-

सबसे हिलिये सबसे मिलिये, सबका लीजिये नाम।
हाँजी हाँजी करते रहिये, बैठिये अपने ठाम ॥

सबके साथ बैठिये, सबके साथ आनन्द करिये, सबका नाम लीजिये, सबसे हाँ हाँ करिये, परन्तु अपने स्थान पर बैठे रहिये-अपने भावको दृढ़ बनाये रखिये।

जैसे छोटेसे बीजमें बडा वृक्ष उत्पन्न होजाता है ऐसे ही इस सच्ची एकतत्त्वनिष्ठासे परमात्माके ध्यानरूप ज्ञानवृक्षकी उत्पत्ति

होजाती है और उसकी शाखा प्रशाखाओंसे धर्मका क्षेत्र बड़ा ही सुहावना होजाता है।

"समाधिरीश्वरप्रणिधानात्।" ईश्वरप्रणिधान अर्थात् ईश्वर में चित्तका लगना जब परिपक्व होजाता है तब और कोई साधना न करने पर भी ईश्वरकी इच्छाके बलसे उसको समाधि लगजाती है ईश्वरका प्रणिधान करनेवाले योगीको योगसमाधि पानेके लिये और किसी योगके अङ्गका आश्रय नहीं लेना पड़ता है। केवल भक्तिके बलसे ही वह ईश्वरमें समाहित होजाता है। भक्त केवल भक्तिके द्वारा ही ईश्वरको प्रसन्न करके उनके अनुग्रहरूप तेजमें अपने क्लेशको भस्म करके और सकल विघ्नोंको नष्ट करके बेरोकटोक समाहित होकर योगका फल पाजाता है।

आसन-साधन

यम और नियमके विषय में जो कुछ कहागया उसके अभ्याससे चरित्र गठित होता है। तुम कहोगे, कि-योगसाधना करनेमें चरित्र गठनका क्या प्रयोजन है? हाँ चरित्रगठनका भी प्रयोजन है। चरित्रगठनको भिन्न २ मार्गोंमेंको चलाना ही योगसाधनका उद्देश्य है॥ पूर्णमनुष्यत्वके मार्गमेंका देवभाव पाना ही योगका फल है। इसलिये ही यम नियम की साधना करके चित्तको निर्मल करे, भीतरी वृत्तिको लेकर कार्य करनेका आरम्भ करदेय यम और नियमकी साधनामें सिद्धि पाकर आसन सिद्ध करने आरम्भ करदेय। आसन और कुछ नहीं है, बैठनेकी रीतिमात्र है। योगी को जबतक खूब उच्च अवस्था प्राप्त न होजाय तब तक उसको नियमसे साधना करनी होगी और उसके लिये दैहिक और मानसिक दोनों प्रकारकी रीतिका अभ्यास करना होगा, ऐसा करनेके लिये बहुत समय तक एकभावसे

एक स्थान पर बैठना होगा। फिर देहके भीतर वायु आदि सहजमें और सरलरूपसे आवाजाई करसकें, इसका भी उपाय करना होगा इसलिये ऐसे एक नियमके साथ बैठना होगा, कि-जिसके अभ्याससे दोनों काम सुख और सहजमें होजायँ। योगी पुरुष दोनों काम खूब सरल और सहजरूपमें होमकें ऐसी बैठनेकी रीतिको नियममें बाँधचुके हैं, योगशास्त्रमें उस बैठनेकी रीतिको ही आसन कहते हैं। अलग २ कार्योंके लिये अलग २ आसनोंकी रीति कही है। पतञ्जलिने आसनोंका बहुत फैलाव नहीं किया है, उन्होंने तो बस इतना ही कहा है-"स्थिरसुखमासनम्" जिस-प्रकार बहुत देरतक स्थिर होकर सुखसे बैठा जासके उसका नाम आसन है जब तक बहुत देरतक स्थिरताके साथ नहीं बैठ सकते हो तबतक तुम प्राणायाम आदि योगकी साधना कर ही नहीं सकते। आसन दृढ़ होनेका अर्थ यह है, कि-तुमको शरीरका सत्त्व बिलकुल मालूम ही न हो, ऐसा होने पर ही; आसन दृढ़ होता है, परन्तु यदि तुम योंहीं साधारणरूपसे कुछ देर बैठनेकी चेष्टा करोगे तो तुमको अनेकों विघ्न दिक करेंगे। परन्तु जब तुम इस स्थूल देहभावको त्यागदोगे तब तुमको शरीरका अस्तित्व तक नहीं मालूम होगा। तब तुझे सुख वा दुःख किसीका भी अनुभव नहीं होगा और जब तेरे शरीरमें ज्ञान आवेगा, तब तुझे अनुभव होगा, कि-मैंने बहुत समय तक विश्राम किया है, यदि शरीरको पूर्णरूपसे विश्राम देना हो तो वह इसप्रकार ही होसकता है। जब तुम इसप्रकार शरीरको अपने वशमें करके दृढ़ रखसकोगे तब तुम्हारा अभ्यास बड़ा अच्छा होजायगा परन्तु जब तुम्हारी शारीरिक विघ्नबाधायें आवेंगी तब तुम्हारे स्नायु-जाल चञ्चल होजायँगे तुम किसी प्रकार भी मनको एकाग्र करके नहीं रखसकोगे। "प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।" शरीरमें

जो एकप्रकारका अभिमानरूप प्रयत्न है उसको शिथिल करनेसे और अनन्तके चिन्तवनके द्वारा आसन स्थिर और सुखदायक होसकता है। सकल द्वन्द्वोंके अतीत ब्रह्म वा आत्माको अनन्त कहते हैं, परन्तु हम यह धारणा उस समय कैसे करसकते हैं ? इसलिये इस दशामें अनन्त आकाशका-चिन्तवन करना सहल होगा। "ततो द्वन्द्वाभिघातः" इसप्रकार आसनजय होने पर शीतोष्ण सुख दुःख आदि द्वन्द्व कुछ विघ्न नहीं डालसकते। आसन बहुतसे हैं, परन्तु गृहस्थ योगीके लिये उन सबका अभ्यास करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। इस ग्रन्थमें दो आसनोंको सिद्ध करनेकी बात कही है, उनमेंसे किसी एकका अभ्यास करलेने से ही काम चलजायगा, अधिक आसनोंके अभ्यासकी कुछ आवश्यकता नहीं है।

प्राणायाम

अब प्राणायामकी बात कहेंगे। प्राणायामसे ही आध्यात्मिक साधनाका आरम्भ होता है "तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगति-विच्छेदः प्राणायामः। आसनका जय होजाने पर श्वासप्रश्वास दोनोंकी गतिको संयम (वशीभूत) करलेनेका नाम प्राणायाम है। आसनसिद्धिके बाद श्वासप्रश्वासकी गतिको तोड़कर जय करना होगा। जिस रीतिसे जय करना होगा, उस रीतिका नाम ही प्राणायाम है प्राणायाम और कुछ नहीं है शरीरोंमेंकी जीवनी शक्तिको वशमें ले आना है। अब यह देखना चाहिये, कि-प्राणायाम करनेसे हमारा क्या उपकार होता है।

योगशास्त्रमें श्वासप्रश्वासको प्राण नामसे कहा जाता है, परन्तु केवल श्वासप्रश्वास ही प्राण नहीं है। जगत्की सब ही शक्तियोंका नाम प्राण है। प्राण हर एक व्यक्तिमें है। उसकी गति

फुसफुसमें मालूम होती है। प्राण जब श्वासको भीतरकी ओरको खेंचता है तब ही गतिका आरम्भ होता है। प्राणायाम करनेके समय हम उसका संयम करनेकी चेष्टा करते हैं इस प्राणके ऊपर अधिकार करनेके लिये हम श्वास प्रश्वासके संयमका आरम्भ करते हैं क्योंकि-यह ही प्राणजयका सबसे सूधा मार्ग है। प्राणजय होने पर ही मृत्युलोकमें रहकर भी हम अमर पद पाजाते हैं प्राणायाम सुषुम्नाके द्वार या ब्रह्ममार्गको स्वच्छ करने का मार्ग है।

प्राणायामको करनेका सहज उपाय-

"बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टेन दीर्घः सूक्ष्मः। बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति यह तीन प्रकारका प्राणायाम है"। देश काल और संख्याके द्वारा दीर्घ और सूक्ष्मरूपसे सिद्ध होतां देखते हैं। प्राणायाम एक प्रकारका प्राणवायुका शिक्षा है अर्थात् प्राणवायु जो स्वाभाविक रूपसे सदा भीतर और बाहरको आयाजाई करता है, उसकी स्वाभाविक आयाजाईको किसी विशेष क्रिया और यत्नके द्वारा रोककर उसको और एक प्रकारका नई रीतिके आधीन करदेना प्राणायाम है। पहले जो आसनोंका वर्णन करचुके हैं, उस रीतिसे ही आसन करके किसी निर्जन और पुष्प आदिसे सुगन्धित किये हुए स्थानमें बैठे और फिर प्राणायाम करनेका आरम्भ करे। प्राणायाम दो प्रकारका होता है-एक सगर्भ और दूसरा निर्गर्भ। ॐ वा इष्टदेवताके बीजमन्त्रके द्वारा जो प्राणायाम किया जाता है वह सगर्भ प्राणायाम है और मन्त्रहीन केवल एक दो इसप्रकार संख्या रखकर जो प्राणायाम किया जाता है व निर्गर्भ प्राणायाम है ॐ वा और किसी बीजमन्त्रके साथ जो प्राणायाम किया जाता है वह बहुतही शीघ्र फलदायक होता है और निर्गर्भ प्राणायाम

में कुछ विलम्ब लगता है। जिनको मन्त्रके साथ प्राणायाम करने का सुभीता हो उनको यही करना चाहिये और जिनको इसमें सुभीता न हो वे एक,दो,तीन,इसप्रकार संख्याके द्वारा ही प्राणायाम करें,परन्तु मन्त्र वा संख्याको बिना रक्खे प्राणायाम करने से फल मिलनेमें विलम्ब होता है अथवा फल मिलता ही नहीं।

पूरयेत्षोडशैर्वायुं धारयेच्च चतुर्गुणैः। रेचयेत्कुम्भकार्धेन अशक्तस्तूत्तरीयतः॥ तदशक्तौ तच्चतुर्थ्या एवं प्राणस्य संयमः। प्राणायामं विना मन्त्री पूजने नैति योग्यताम्। कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम्। प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमां विना"

दाहिने हाथके अंगूठेसे दाहिने नासापुटको पकडकर वायुको रोके और ॐका अथवा इष्टदेवताके मूलमंत्रका सोलहवार जप करता हुआ वाम नासापुटसे वायुको भरे तथा कनिष्ठ और अनामिका अंगुलीसे वायें नासापुटको पकडकर वायुको रोके और ॐका वा मूलमंत्रका पहलेसे चौगुणा अर्थात् चौंसठ बार जप करता हुआ कुम्भक करे, तदनन्तर अंगूठेको दाहिने नासापुटपरसे हटा कर ॐका वा मूलमंत्रका बत्तीस बार जप करता हुआ दाहिने नासापुटसे,धीरे २ वायुको निकाले, वायें हाथकी रेखाओं पर जपकी संख्या करता जाय। इसप्रकार ही फिर उलटे क्रमसे अर्थात् श्वासको छोडदेनेके बाद इस दाहिने नासापुटसे ही पहले की समान अङ्क वा मूलका जप करता हुआ पूरक और दोनों नासा पुटको धारण करके कुम्भक तथा फिर रेचक करे, इसके बाद फिर उसीप्रकार पूरक कुम्भक और रेचक करे। पहले यदि ऊपर बताई हुई संख्याका जप करनेमें कष्ट हो तो क्रमसे८।३२।१६ अथवा ८।१६।८ बार जप करताहुआ प्राणायाम करे।

प्राणायाममें जो ह्रस्व,दीर्घ और सूक्ष्मकी बात कही थी वह श्वास प्रश्वासकी गतिके अनुसार होती है तैलधाराको समान

अविच्छिन्न श्वास श्रेष्ठ कहलाता है। प्राणायामकी दीर्घता और सूक्ष्मता केवल स्थान काल और संख्याविशेषसे जानीजाती है। पहले तुम परीक्षा करके देखो, तुम्हारा छोड़ाहुआ श्वासका वायु कितनी दूरतक जाता है। रुई बहुत पतली धुनकर क्रम २ से दूर को हटाकर देखो, श्वासकी वायुसे कितनी दूरतक जाती है, इससे ह्रस्वपना और दीर्घपना मालूम होजायगा। कुम्भककी ह्रस्वता और दीर्घताको जाननेका यह उपाय है, कि-कुम्भकके समय यदि मालूम हो, कि सब शरीरमें वायु भरगया है तो वह दीर्घ है, प्राणायामकी दीर्घता ही श्रेष्ठ होती है, यदि ह्रस्व हो तो उसको दीर्घ करलेय। इसप्रकार ह्रस्व और दीर्घ करनेका उपाय ॐकार वा बीजमंत्रकी संख्याके ऊपर निर्भर है, यह बात तुमसे पहले ही कहदी है। इस समय देहके भीतर नियमित परिमाणमें श्वास को ग्रहण करना और निर्दिष्ट परिमाणमें ही बाहरको छोड़ना, इससे शरीरमें समता आजाती है। प्राणायाम करनेके समय मन ही मनमें भावना करे, कि-ओंकार वा बीजमंत्र ताल २ पर पूरकके समय भीतर जारहा है, कुम्भकके समय ताल २ पर नस २ में नसोंकी सब ग्रन्थियोंमें अर्थात् सब शरीरमें भरकर घूमरहा है तथा रेचकके समय ताल २ पर बाहरको निकलरहा है। इसप्रकार प्राणायामका अभ्यास करलेने पर पहले ही तुमको परमशान्ति मालूम होगी। सच्चा विश्राम किसको कहते हैं, इसका अनुभव होजायगा। सारे दिन अन्य कामोंमें बिताकर एक बार प्राणायाम करनेसे परम सुखका अनुभव होगा, ऐसे, विश्रामका-सुखका अनुभव जीवनमें और कभी किया ही नहीं होगा। फिर और भी अभ्यास बढजाने पर तुम्हारे मुखपर तेज दमक उठेगा, तुम्हारे मुख परसे सूखे दाग और चिन्ताकी रेखायें दूर होजायँगी। कण्ठके स्वरमें मोहकता आजायगी।

ज्ञानकी नई किरणें फूट निकलेंगी। इस प्रकार प्राणायामका कुछ दिनों अभ्यास करके फिर एक और भी ऊँचे दरजेका काम करना होगा। पहले इड़ा नाडी अर्थात् बायें नासापुटके द्वारा धीरे धीरे वायुको खेंचकर फुसफुसको वायुसे भरदेना होगा इसी समय नसोंके प्रवाहमें मनको लगाकर चिन्तवन करना होगा, कि-मानो तुम इस स्नायुप्रवाहको इडानाडीके भीतर लेजाकर नीचेकी ओरको नमाकर कुण्डलिनी शक्तिके आधारभूत मूलाधारके उस त्रिकोण पद्मके ऊपर बडी जोरसे आघात कररहे हो। ऐसा करके फिर इस स्नायुप्रवाहको कुछ देरके लिये इस स्थान पर ही धारण किये रहो। तदनन्तर कल्पना करो, कि-उस सब स्नायुशक्तिके प्रवाहको श्वासके साथ दूसरी ओरको खेंचे लिये जारहे हो। फिर दाहिने नासापुटके द्वारा वायुको धीरे २ बाहर निकालदो। इस प्रक्रियाके बाद कुम्भक करना होता है। आधी रातके समय इसप्रकार फुसफुसमें वायुको भरकर दोनों कानोंको हाथसे बन्द करके कुम्भक करो। क्रमसे अभ्यास करते २ दाहिने कान में शरीरके भीतरका शब्द सुनाई आने लगेगा। पहले झींगर केसा शब्द सुनाई आवेगा। फिर और कुछ दिनों साधना करने पर क्रम २ से वंशीकेसा शब्द, मेघके गरजनेका शब्द, झांझ केसा शब्द, भौंरेकी गुञ्जारका शब्द, घण्टा, घडियाल-तुरही-भेरी-मृदङ्ग-नगाडा और दुन्दुभि आदि अनेकों बाजोंका शब्द क्रमसे सुनाई आवेगा। नित्य अभ्यास करते २ क्रमसे ये सब बाजोंके शब्द सुननेमें आते हैं। फिर और भी अभ्यास होजाने पर हृदयमेंके अनाहत चक्रके भीतरसे अपूर्व शब्द और तत्काल ही उसका प्रतिशब्द सुनाई आता है। तदनन्तर योगी नेत्रोंको मूँदने पर अपने हृदयमें उस अनाहत पद्ममें प्रतिध्वनिके भीतर ज्योतिका दर्शन करता है। उस ही दीपशिखाके ज्योतिर्मय ब्रह्म

में योगीका मन लगजाता है और ब्रह्मरूप विष्णुके परम पदमें लीन होनेकी शक्ति आजाती है।

प्रत्याहार

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं–

"स्वस्वविषयसम्प्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। ततः परमवश्यतेन्द्रियाणाम्"। इन्द्रियोंसे उनका अपना २ विषय छुटाकर चित्तके स्वरूपको ग्रहण करनेमें लगा देनेका नाम प्रत्याहार है अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियें जो रूप आदिकी ओरको दौडती हैं, उस बाहरी आसक्तिसे उनका मुख फिरा देनेका या उनकी उस विषयासक्तिको नष्ट करदेनेका नाम प्रत्याहार है।

साधु बन जाओ, आसक्तिको छोडो। यह बात विश्वभरमें गूँजरही है। सब देशोंके सब ही लोग कहते हैं, कि–हम साधु बनेंगे। स्त्री, पुत्र, कन्या, भ्राता सब साधु बनजायँ, यह इच्छा भी सबकी ही होती है, परन्तु यह होय कैसे? हम आप साधु क्यों नहीं बनजाते? जानते हो जी चाहता है तो भी ऐसा क्यों नहीं होता? एक दिन दो दिन न सही, दो महीनेमें साधु बन सकते हो, परन्तु उसके बाद ही जहाँ किसी कुमुहूर्त्तमें किसी कामिनीके कटाक्ष–बाणसे विंधे कि साधुता गई! अथवा धनके लोभमें वा प्रेमके उभारमें साधुता दूर भागजाती है। जिस उपाय से ऐसा न होनेपावे, जिस उपायसे इन्द्रियोंको विषयकी ओरको जानेसे रोकाजासके वही प्रत्याहार है। "खोटा काम न करो, यदि करोगे तो दुःख पाओगे" सब ही ऐसा कहते हैं, परन्तु खोटे कामसे बचना कैसे होता है, इसकी रीति कोई किसीको नहीं बताता। "खोटा काम न करो" ऐसा कहकर ही सब चुप हो बैठते हैं, यदि ऐसा कहनेके साथ २ रीति भी बतादी जाती तो

विशेष काम होता और ऐसे उपदेशका ही नाम प्रत्याहार है।

जिस समय मन, इन्द्रिय नामक भिन्न २ शक्तियोंके केन्द्रसे मिलता है तब ही सब बाहरी और भीतरी काम हुआ करते हैं जानकर हो चाहे अनजानमें हो, मनुष्य अपने २ मनको इन्द्रिय नामक भिन्न २ केन्द्रोंके साथ लगा देनेमें विवश होता है, इस लिये ही मनुष्य नानाप्रकारके असत् कर्म करता है और अन्तमें उन दुष्कर्मोंके फलभोगमे कष्ट पाता है। जबतक इन्द्रियोंकी वृत्तियें अपने वशमें न होंगी तबतक केवल "खोटा काम नहीं करूँगा ऐसी साधारण इच्छामात्रसे इन्द्रियें कदापि नहीं लौटेंगी। इन्द्रियेंरूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषयोंकी उदास बनी हुई हैं, उन विषयोंको पाजाने पर इन्द्रियोंको किसी प्रकारका ज्ञान नहीं रहता है। रूपको देखकर नेत्र उधरको झुकेंगे ही, नेत्र झुके, कि—मन भी उसका भाव ग्रहण करके मतवाला हो उठेगा। इन्द्रियें तो मनकी ही जुदी २ अवस्थामात्र हैं। मानलो, कि—तुम एक फूलको देखरहे हो, वास्तवमें इस फूलकी आकृति बाहर नहीं है, वह केवल मनमें ही है, बाहरकी इस आकृतिको वह केवल जगा-देती है, वास्तवमें वह मनमें ही है। ये इन्द्रियें जो विषयोंके सामने आती हैं और उनके साथ मिलकर उनका ही आकार धारण कर लेती हैं। इन्द्रियोंके इन भिन्न २ आकार धारण करनेको रोकनेका नाम ही प्रत्याहार है।

जब इन्द्रियोंको इस प्रकार आकार धारण करनेसे रोकदिया जायगा तब ही वास्तविक निष्काम कर्म हो सकेगा अर्थात् चित्तमें किसी प्रकारके संस्कारका दाग नहीं पड़ेगा। मानलो, कि—जब चक्षु रूप के ऊपर—आसक्त होनेको है उसी समय उसको रूपसे उठा लो और रूपरहित करके मनके अर्पण करदो अर्थात् ऐसा यत्न करो जिसमें चक्षु मनको रूप न देय, कान शब्द न देय

नासिका गन्ध न देय, रसना स्वाद न देय तथा त्वचा स्पर्श न देय। हरएक इन्द्रिय ही जिससे अपने २ ग्रहण करने योग्य विषयको त्यागकर अविकारी दशामें चित्तके अनुगत रहे, ऐसा करनेका नाम ही प्रत्याहार है और इसके अभ्यासका नाम प्रत्याहारसाधना है। जिनका भगवान्में प्रेम होगया है, जिनकी इन्द्रियें एकमुखी होकर भगवान्के अनुगत होगई हैं, उनका यह भाव ही प्रत्याहार है। दृढ़ विश्वाससे प्रत्याहारकी साधनामें सिद्धि होती है। इसके लिये चित्तको दृढ़ करना चाहिये और अभ्याससे स्थिर करना चाहिये। रूपका ग्रहण करके मैं क्या करूँगा ? रूपके अनन्त आधार भगवान् तो मेरे हृदयमें ही हैं। भगवान्को चित्त अर्पण करदेने पर रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि इन्द्रियोंके सब विषय वहाँ ही मिलजाते हैं। ऐसा, दृढ़ विश्वासके साथ अभ्यास करने पर होता है। ऐसे अभ्यासके फलसे ही मैस्मरेजिम और हिपनोटिज्म आदि विद्याओंका आविष्कार हुआ है।

प्रत्याहारकी साधनाके लिये विश्वासके साथ चित्तकी दृढ़ एकाग्रता चाहिये। चक्षुने रूपको देखा, परन्तु उसको रूपके आकारमें परिणत होकर मनके पास नहीं आने देना चाहिये, दृढ़ विश्वासके साथ ऐसा अभ्यास करनेका नाम ही प्रत्याहार है। सब इन्द्रियोंके विषयमें ऐसा ही करना चाहिये। कुछ दिनोंमें जब इन्द्रियसंयमका अभ्यास होजाय तब तुम चित्तको अपनी इच्छानुसार स्थिर रख सकोगे, चक्षु आदि इन्द्रियें भी साथ २ मनकी अनुगामिनी होजायँगी। जब तुम चित्तको इसप्रकार अपना इच्छानुगामी बनालोगे तब किसी प्रकारका भी रूप आदि विषय तुम्हारे चक्षु आदिको नहीं खेंचसकेगा। प्रत्याहारपरायण योगी प्रकृतिको चित्तके वशमें करके परम-स्थिरता पाता है। इसप्रकार बाहरी प्रकृति वशमें होजाने पर उस प्रत्याहार-परायण योगीके

लिये अपना हृदयद्वार खोलदेगी। उस समय योगी प्रकृतिके चेतन अचेतन सब वस्तुओंको क्रीड़ाकी पुतली बनाकर जो चाहेगा वही करसकेगा।

धारणा

धारणा योगवृक्षके खिलेहुए पुष्पका बीज है–"तदयं योगो यमनियमादिभिः प्राप्तबीजभावः, आसनादिभिरंकुरितः प्रत्याहारादिभिः कुसुमितो ध्यानधारणादिभिः फलिष्यति।" योगी कहते हैं, कि–योगको एक वृक्षरूप कल्पना किया जासकता है, यम नियम आदिसे उस वृक्षका रोपण करनेवाला बीज उत्पन्न होता है, आसन और प्राणायाम आदिकी साधनासे इस बीजमें अंकुर उत्पन्न होता है, प्रत्याहार आदिकी साधनासे इस योगवृक्ष पर फूल आजाता है। फिर ध्यान धारणा और समाधिसे फल आजाता है पहले बीज, फिर अंकुर फिर फूल और उसके बाद फल आता है, यह प्रकृतिका नियम है। यहाँ तक जो कुछ कहागया यह योगवृक्षका फूल है, अब आगे फलकी बात कहते हैं। ध्यान धारणा और समाधिकी साधनासे उस फलको पाना होगा।

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" चित्तको देशविशेषमें बाँधकर रखनेका नाम धारणा है। रागद्वेष आदिसे शून्य होकर और यम नियम आदिसे शुद्धचित्त होकर किसी एक विषयमें चित्तको बाँधकर रखनेका नाम धारणा है। शास्त्र कहता है–

"नाडीचक्रहृदयनासाग्रादौ बाह्ये वा शास्त्रोक्तकृष्णविष्णुशिवहिरण्यगर्भादिमूर्त्तौ देशे अवलम्बने बन्धो विषयान्तरपरिहारेण स्थिरीकरणं धारणा।" नाडीचक्र अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रदल पद्ममें अथवा नासिकाके अग्रभागमें अथवा शास्त्रोक्त कृष्ण, विष्णु, शिव, सूर्य

आदिकी चित्तानुकूल मूर्त्तिमें, उससे अन्य विषयोंको त्यागकर चित्तको स्थिर करनेका नाम धारणा है। वैष्णव कहते हैं–

> प्राणायामेन पवनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ।
> वशीकृत्य ततः कुर्याच्चित्तस्थानं शुभाश्रये ॥
> एषा वै धारणा ज्ञेया तच्चित्रं तत्र धार्यते ।

प्राणायामके द्वारा श्वास प्रश्वासको, प्रत्याहारके द्वारा इन्द्रियोंको वशमें करके चित्तको निर्मल करताहुआ भगवान् श्यामसुन्दरमें लगा देय अर्थात् किसी एक सुन्दर वस्तुमें चित्तको और विषयोंकी चिन्तासे हटाकर लगाता हुआ उसमें ही बाँधदेनेका उद्योग करे, इसप्रकार चित्तको एक वस्तुमें बाँधसकने पर चित्त एकमुखी होजायगा धारण करनेका ही नाम धारणा है। धारणा ही स्थायी होजाने पर ध्यान कहलाती है। पहले पहल एक समय नियत करके ऐसी धारणा करनेका आरम्भ करे। पहले दो मिनट, फिर चार मिनट, फिर पाँच मिनट, इसप्रकार क्रमसे बढाता जाय। रात दिनमें चार पाँच वार ऐसा करे।

ध्यान

धारणा करने योग्य पदार्थमें चित्तकी एकतानताका नाम ध्यान है। "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" पहले जिस धारणाकी वात कही है उस धारणीय पदार्थमें यदि चित्तवृत्तिकी एकतानता होजाय तो वही ध्यान है। "यदेव धारणायामवलम्बनीकृतं वस्तु यदाकाराकारितचित्तवृत्तिश्चेदनन्तरिता प्रवहति तदा तद् ध्यानम् ।" जिस वस्तुमें तुमने वाहरी इन्द्रियोंको रोककर अन्तरिन्द्रियको धारण किया है, उस वस्तुका ज्ञान यदि तुम्हारे अन्तःकरणमें प्रवाहरूपसे बहनेलगे तो उस मनोवृत्तिके प्रवाहको ध्यान कहते हैं। शास्त्रमें तीन प्रकारका ध्यान कहा है––

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः ।
स्थूलं मूर्त्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा ॥
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ।

ध्यान तीन प्रकारका है स्थूलध्यान, सूक्ष्मध्यान, और ज्योतिर्ध्यान । जिसमें मूर्त्तिमान् देवता की भावनाकी जाती है उसका नाम स्थूलध्यान है । जिसमें तेजोमय ब्रह्म वा प्रकृतिका चिन्तवन कियाजाता है उसको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं और जिस ध्यानके द्वारा बिन्दुमय ब्रह्म और कुण्डलिनी शक्तिका दर्शन करनेकी योग्यता प्राप्त होती है उसको सूक्ष्मध्यान कहते हैं ।

जिसका जो इष्टदेवता हो वह उस ही इष्टदेवताका हृदयकमलमें ऐसा ध्यान करे कि–मेरा इष्टदेव सकल आभूषणोंसे भूषित तथा सकल शोभामय रूपवाला है यही स्थूल ध्यान है । दोनों भौंके मध्यमें और मनःस्थानके ऊपर जो ॐकारमय तथा शिखासमूह-युक्त तेज है, उस तेजोराशिका ब्रह्मरूपसे ध्यान करना ही तेजो-ध्यान है । और सूक्ष्मध्यानमें पहले ध्यान करे, कि–सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति जागकर जीवात्माके साथ षट्चक्रको भेदती हुई ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे निकल कर ऊपरके राजमार्गमें जापहुँची है; ॐकारमय व्यक्त ब्रह्मबीज प्रकृति और पुरुष दो मूर्त्तियोंमें खड़ा होकर रसतत्त्वके विहारमें लगा हुआ है और टपकतीहुई रसधारको कुण्डलिनी पीरही है, मनको उन प्रकृति पुरुष वा राधाकृष्णके चरणोंकी धारणामें ही लगाये रक्खे, यही सूक्ष्म ध्यान है ।

इस ध्यानका भी अभ्यास करना होता है । एक २ दो२ मिनट करके बढाना चाहिये ।

समाधि

अब समाधिका स्वरूप और उसकी साधनाकी रीति कहते हैं–"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" आत्मज्ञानसे रहित अर्थात्–मैं ध्यान करता हूं' ऐसी भावनाको छोड़कर उस

ध्यानको केवल ध्येय वस्तुमें ही प्रकाशित करे, इसका ही नाम समाधि है। जब ध्यान गाढ़ा होजाता है तब ध्येय वस्तु और मैं ऐसा पृथक्२ ज्ञान नहीं रहता है, उस समय चित्त ध्येय वस्तुमें ही प्रवेश करजाता है उस लयावस्थाको ही समाधि कहते हैं। ध्यानकी परिपक्व अवस्था ही समाधि है, इसलिये ध्यान करते२ ही वह उसकी परिपक्व अवस्था होजाती है, तब ही उसको समाधि कहते हैं। योगियोंने समाधि छः प्रकारकी बताई है और उसकी साधनाके उपाय भी छः ही कहे हैं—

> शाम्भव्या चैव खेचर्या भ्रामर्या योनिमुद्रया।
> ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा॥
> पञ्चधा भक्तियोगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा।
> षड्विधोऽयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्॥

छः प्रकारकी समाधि यह है—ध्यानयोगसमाधि, नादयोगसमाधि, रसानन्दयोगसमाधि, लययोगसमाधि, भक्तियोगसमाधि और राजयोगसमाधि।

ध्यानयोगसमाधि उसको कहते हैं, कि—जिसमें ध्यानके द्वारा आत्मप्रत्यक्ष होजाने पर विष्णुरूप ब्रह्मको दृष्टिमार्गमें लाकर इस बिन्दुस्थानमें स्थापित करदेय फिर शरीरमेंके ब्रह्मलोकमय आकाश में जीवात्माको लाना तथा जीवात्मामें इस शिरमेंके ब्रह्मलोकमय शून्यस्थानको लानेका चिन्तवन करे। ऐसा होने पर ध्येय वस्तुका और अपना एकत्व भी लीन होजायगा, यही ध्यानयोगसमाधि है। नादयोग समाधिमें—जिह्वाको तालुकी जड़में लगाता हुआ ऊपरको पहुँचा देय, इसमें चित्त एकाग्र होकर परमपदमें लीन होजाता है। लययोगसमाधिमें—भ्रामरी कुम्भकके समय देहमें भौंरोंके गूँजनेकेसा शब्द होता है। इस स्थानमें मनको लगाना चाहिये। रसानदयोगसमाधिमें-योगी अपने आपको (जीवात्माको) शक्ति अर्थात् स्त्री (गोपी) और परमात्माको पुरुष (श्रीकृष्ण)

भावना करे। स्त्री पुरुषकी समान जीवात्माके साथ परमात्माका शृङ्गाररसपूर्ण विहार होरहा है, ऐसा चिन्तवन करे और ऐसे संभोगसे उत्पन्न हुए परमानन्दरसमें मग्न होकर परब्रह्मके साथ स्वयं अभेदरूपसे परमप्रेममें लीन हुआ समझे। भक्तियोग समाधि में—परम आनन्दके साथ अपने हृदयमें इष्टदेवताका ध्यान करता हुआ उसमें अपनेको लीन करदेय। राजयोगसमाधिमें मनोमूर्छा नामक कुम्भक करके परमात्मामें अपनेको लीन करदेय। इनमेंसे किसी एक योगका अवलम्बन करनेपर समाधि होजायगी, एकसे अधिककी साधना न करे, क्योंकि-ऐसा करनेपर सिद्धि नहीं होगी।

कैवल्य

पहले ही कहचुके हैं, कि—बाहरी और भीतरी प्रकृतिको वशमें करके आत्माके ब्रह्मभावको व्यक्त करना ही योगका प्रयोजन है। यहाँ तक हमने जोकुछ कहा उससे जीवको आत्मसाक्षात्कार होता है। मैं कौन हूँ, किसलिये आया हूँ, इसका तत्त्व मालूम होता है, ऐसा ज्ञान होते ही साधक कैवल्य नामक परमश्रेयके द्वारपर पहुँचजाता है "सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति" जब सत्त्व और पुरुषकी समभावसे शुद्धि होजाती है तब ही कैवल्य प्राप्त होता है। कैवल्य ही हमारा लक्ष्य है। इस लक्ष्य पर पहुँच जाने पर ही आत्माका ज्ञान होता है, कि—वह सदा ही एक है, उसको सुखी करनेके लिये और किसीकी भी आवश्यकता नहीं है। जबतक हम अपने आपको सुखी करनेके लिये और किसी को चाहते हैं तबतक हम दास बनेहुए हैं। जब जानलेता है कि, वह मुक्तस्वभाव है, उसको पूर्ण करनेके लिये किसीकी भी आवश्यकता नहीं है। जब जानलेता है, कि—यह प्रकृति क्षणिक है, इसका कुछ प्रयोजन नहीं है, तब ही मुक्ति पाजाता है, तब ही कैवल्य पाता है। जब समझता है कि—जगत्‌के अतिछोटे परमाणु से लेकर देवताओं तक किसीसे भी उसका कुछ प्रयोजन नहीं है,

तब ही आत्माकी उस अवस्थाको कैवल्य-पूर्णता कहते हैं। जब शुद्धि अशुद्धि दोनोंसे मिला हुआ मन पुरुषकी समान शुद्ध होजाता है तब ही सत्त्व (मन) में निर्गुण, पवित्र स्वरूप पुरुषका प्रतिबिम्ब पड़ता है। पीछे जो योगकी बातें कह आये हैं, उनके द्वारा आत्मदर्शन हो जाने पर—आत्मा वा ब्रह्ममें दृढ़ प्रत्यय उत्पन्न होजाने पर प्रकृतिके ऊपर घृणा होने लगती है, उस समय प्रतीत होता है, कि- प्रकृति कुछ है ही नहीं, इसलिये उस समय आत्मा केवल होता है। पातञ्जलि कहते हैं,कि-"जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः"जन्म, औषधि, मन्त्र तप समाधिसे सिद्धि (अवस्था) प्राप्त होती है। जन्म अर्थात् पहले जन्मकी सिद्धिशक्तिको लेकर बहुतसे लोग जन्म लेते हैं। ओषध अर्थात् संजीवनी अमृत (Elixirlite) राजयोगी कहते हैं, संयमसे मनुष्यमें यह अवस्था आ सकती है। मंत्र नामके कुछ पवित्र शब्द हैं,शास्त्रमें बताये हुए नियमसे उनका उच्चारण और अनुष्ठान करना चाहिये। तपस्या अर्थात् अष्टाङ्गयोगका इस समाधिसे पहला १ भाग। ये सब गौण साधन हैं। इनके बाद समाधि है। समाधिसे हम मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सब सिद्धि पा सकते हैं। इससे मालूम हुआ, कि- पहले समाधि पर्यन्त जो कुछ कहा है उसको साधना से सिद्धि प्राप्त होने पर आत्मा केवल—प्रकृतिके भोगसुखसे निःस्पृह होजाता है, यह चरम लक्ष्य है। पहले सब साधनोंसे धीरे २ हमारे ज्ञान और विवेकशक्तिकी शुद्धता होती है, समाधि से आत्मदर्शन होता है,हमारी दृष्टिके सामनेका परदा हट जाता है। उस समय हम वस्तुके यथार्थ-स्वरूपको पा जाते हैं। उस समय हम समझते हैं, कि- प्रकृति एक मिश्र पदार्थ है, वह साक्षि स्वरूप आत्मा वा ईश्वरके लिये ये सब विचित्र दृश्य दिखलाती है,उस समय हम समझते हैं कि प्रकृति ईश्वर नहीं है, प्रकृतिका

सब अभाव केवल हमारे हृदयसिंहासनके राजा पुरुषको ये सब दृश्य दिखानेके लिये हैं। जब चिरकाल तक अभ्यास करनेसे विवेकका उदय होता है उस समय परदा हट जाता है, बन्धन खुल जाता है, कैवल्यकी प्राप्ति हो जाती है "पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।" जब गुण पुरुषके किसी प्रयोजनमें नहीं आते हैं तब वे प्रतिलोम (उलटे) क्रमसे लय हो जाते हैं, इसको ही कैवल्य या चित्‌शक्ति की स्वरूपप्रतिष्ठा कहते हैं। यहाँ आकर प्रकृतिका काम समाप्त हो जाता है। प्रकृति अपनेआपेको भूले हुए जीवात्माको लेकर क्रीड़ा करती है, अनेकों प्रकारके भोगोंमें मोहित कर रखती है, परन्तु अब आत्मा उसको नहीं चाहता—यह समझगया है, कि—प्रकृतिके भोग आदि स्वप्नकी समान मिथ्या हैं, इसलिये ही प्रकृति जिस मार्गसे आई थी उस ही मार्गसे लौटजाती है और जो जीवनके मार्गको—चिन्हसे हीन रितीली भूमिमें मार्गको भूलगए हैं, उस समय उनको मार्ग दिखाने लगती है। योगी कहते हैं कि-स्वरूप को जान लेने पर यह पुरुषके सामने नहीं आती है। इस लिये प्रकृतिके बन्धनसे छूटाहुआ पुरुष उस समय केवल होजाता है।

भ्रातृगण! गृहस्थों! जन्मजन्मान्तरों तक बंधनमें पड़े रहे हो, आओ हम प्रकृतिके सुखदुःखके भीतर होकर—भले बुरेके भीतर होकर सिद्धि और आत्मसाक्षात्कारके समुद्रकी ओरको चलें!

परिशिष्ट—

योगसाधनाका अभ्यास करनेवाले गृहस्थके लिये यहाँ कुछ बातें बतादेनेकी आवश्यकता है। योगीका शरीर नीरोग और स्वस्थ रहना चाहिये। जो संसारको छोड़कर जङ्गलमें चले जाते हैं वे मुद्रा आदिकी साधनासे शरीरको दृढ़ और नीरोग कर लेते हैं, इसलिये वे गरमी सरदी आदिसे नहीं डरते। परन्तु उनकी देखा देखी गृहस्थ साधक गरमी सरदीसे कदापि असावधान न रहे,

ऋतुके अनुसार उपयोगी वस्त्रोंको काममें लावे। यदि कोई रोग होजाय तो औषधका सेवन करे। 'मैं योगसाधना करता हूँ' ऐसे अभिमानमें आकर गृहस्थियोंके योग्य काम करने न भूल-जाय। वस्त्र आदि गृहस्थोंकेसे ही पहरे, गेरुआ कपड़े गृहस्थोंके लिये नहीं हैं, दिखावट करना-पाखण्ड बनाना ठीक नहीं है। योगी 'पञ्चामरा' नामक एक औषधका सेवन करते हैं। बीच २ में इसका सेवन करते रहनेसे मनुष्यके बल, वर्ण, वीर्य और आयुकी वृद्धि होती है। गृहस्थ योगी इस औषधको तयार करके इसका नित्य सेवन किया करें तो लाभ होगा।

एका तु अमरा दूर्वा तस्या ग्रन्थि समानयेत् ।
अन्या तु विजया देवी सिद्धिरूपा सरस्वती ॥
अन्या तु विल्वपत्रस्तथा शिवसन्तोषकारिणी ।
अन्या तु योगसिद्ध्यर्थे निर्गुण्डी चामरा मता ॥
अन्या तु कालतुलसी श्रीविष्णोः प्रियतोषिणी ।
एताः पञ्चामरा ज्ञेया योगसाधनकर्मणि ॥

दूबकी गाँठ, भङ्ग, विल्वपत्र, निर्गुण्डी, काली तुलसी इन पाँचोंको पञ्च अमरा कहते हैं। इन पाँचोंको लाकर धूपमें सुखा-लेय, फिर अलग२ पीसलेय। तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे हरएक का शोधन करके, मिलादेय दूब, विल्वपत्र, तुलसी और निर्गुण्डी इन चारोंको मिलाने पर जितना वजन होय उतना ही भङ्गका चूर्ण मिलावे। सन्ध्याके समय दूध और शर्कराके साथ सेवन करे। मात्रा एक मासेसे दो मासे तक जितनी भी सहसके। शास्त्रकहता है,

पञ्चामराभक्षणेन अमरो योगसिद्धिभाक् ।

पञ्चामराके सेवनसे शरीर स्वस्थ रहता है और योगसिद्धिमें सहायता मिलती है।

पञ्चामराके शोधनका मंत्र—

दूर्वाशोधन—ॐ हरे अमरपुष्टे त्वामृतोद्भवसम्भवे । अमरं मां

सदा भद्रे कुरुष्व त्वं हरप्रिये ॥ ॐ दूर्वायै स्वाहा । विजयाशोधन—ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षय आकर्षय सिद्धिं देहि सर्वं वशमानय स्वाहा । बिल्वपत्रशोधन—ॐ कामसिद्धिकरे देवि बिल्वपत्रनिवासिनि । अमरत्वं सदा देहि शिवतुल्यं कुरुष्व माम् ॥ शिवदायै नमः स्वाहा । निर्गुण्डीशोधन—ॐ निर्गुण्डि परमेशानि योगानामधिदेवते । सा मां रक्षतु अमरे भवसिद्धिप्रदे नमः ॥ ॐ शोकापहायै नमः स्वाहा । तुलसीशोधन—ॐ विष्णोः प्रिये महामाये कालज्वालनिवारिणि । तुलसी मां सदा रक्ष मामेकममरं कुरु ॥ ॐ ह्रीं श्रीं ऐं ह्रीं अमरायै नमः स्वाहा ।

तदनन्तर पाँचों पदार्थ इकट्ठे करके बिल्वपत्रशोधनके मन्त्रको एकवार पढ़े फिर शीशी या डिबियामें रखलेय और प्रयोजनके अनुसार व्यवहारमें लावे ।

रिपुजय—

गृहस्थ योगी बननेके लिये सब प्रकारसे उद्योग करके रिपुजय करें । इसके लिये योगशास्त्रमें अनेकों उपाय कहे हैं, परन्तु एक मात्र ब्रह्मचिन्तवनके द्वारा सकल शत्रुओंका जय होजाता है । मैं कौन हूँ ? और मेरा वैरी कौन है ? मेरे शत्रुके शरीरमेंका जो चैतन्य है वही मैं भी हूँ, तो क्या इस देहके साथ मेरी शत्रुता है ? शरीर तो दोनोंका श्मशानमें भस्म होजायगा, जोकुछ रहेगा वह तो मेरा उपास्य ब्रह्म है, उसके साथ शत्रुता कैसी ?

आत्मजय—

विवेकबुद्धिके द्वारा आत्माका संसारसे उद्धार करे, क्योंकि—आत्मा ही अपना बन्धु और और आत्मा ही अपना वैरी है । जिस आत्माने आत्माको जीत लिया वह आत्मा ही आत्माका बन्धु है और जिसने आत्माको नहीं जीता वह मानो वैरीकी समान अपना अपकार करता है । गरमी सरदी सुख दुःख, मान

अपमानका अवसर आने पर केवल जितात्मा शान्त पुरुषका आत्मा ही साक्षात् आत्मभावकी धारणा करता है। वैरी, मित्र, उदासीन, मध्यस्थ बन्धु, साधु, असाधु सबको एकसमान देखे।

योगी पुरुष निर्जनस्थानमें अकेला रहे, केवल प्रयोजनके समय मनुष्योंसे मिले, आशा न रक्खे, दान न लेय, अन्तःकरण तथा देहको वशमें रक्खे। न अधिक भोजन करे, न निराहार ही रहे, न अधिक सोवे, न सर्वथा जगता ही रहे, जिसका आहार, विहार, कर्मचेष्टा, सोना और जागना नियमके साथ होता है वही योगमार्गमें आगेको बढ़सकता है।

सब विषय नाशवान् है, सुखके पीछे दुःख लगाहुआ है, एक आत्मा ही सुखकी वस्तु है, उसको ही पानेके लिये चेष्टा करे। इसके लिये सब कामनाओंको हटाकर, अन्तःकरणके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंमेंसे लौटाकर योगका अभ्यास करे। मनको आत्मामें लगाकर स्थिरबुद्धिसे धीरे २ विरतिका अभ्यास करे और किसी अनावश्यक विषयका चिन्तवन न करे। चञ्चल मन जिस विषयमेंको भा जाय उधरसे लौटाकर वशमें करे। योग-सिद्धिके लिये अधिक शीघ्रता न करे। मनुष्य एक ही जन्मके लिये नहीं है,इस जन्ममें जो कुछ करचुकेगा,अगले जन्ममें उससे आगेको आरम्भ करेगा। अगले जन्ममें पूर्वजन्मकी बुद्धि पाकर जो मुक्तिके लिये पहले जन्मसे भी अधिक उद्योग करता है वह किसी कारणवश न चाहे तो भी पहले जन्मका अभ्यास उसको ब्रह्म-चिन्तवनमें लगा देता है। जो जलमें रसरूप, चन्द्रसूर्यमें प्रभारूप, वेदमें ॐकाररूप, आकाशमें शब्दरूप, पृथिवीमें गन्धरूप, अग्निमें तेजोरूप, और सकल प्राणियोंमें जीवनरूपसे विद्यमान है, उस परमात्माका सर्वदा चिन्तवन करके समाधि लाभ करो, ॐशान्ति३

❀ समाप्त. ❀